वैदिक-विज्ञान

पं० शिवशंकर शर्मा 'काव्यतीर्थ'

ओ३म्

वैदिक-विज्ञान

लेखक
स्वर्गीय पं० शिवशंकर शर्मा 'काव्यतीर्थ'

प्रकाशक :
सत्यधर्म प्रकाशन
चलभाष : ०९२१३३-२६५५२, ०९८१२५-६०२३३

प्रकाशक : **सत्यधर्म प्रकाशन**
चलभाष : ०९२१३३-२६५५२, ०९८१२५-६०२३३

प्राप्ति-स्थान : **गुरुकुल भैयापुर-लाढ़ौत,** रोहतक (हरियाणा)

संस्करण : प्रथम, २००८ ई०

मूल्य : ४५.०० रुपये

प्राप्ति-स्थान : **१. हरयाणा साहित्य-संस्थान**
महाविद्यालय गुरुकुल, झज्जर-१२४१०३ (हरयाणा)
२. आर्यसमाज मन्दिर, काकरिया
रायपुर दरवाजे से बाहर, अहमदाबाद (गुजरात)
३. कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, चोटीपुरा
जिला ज्योतिफुलेनगर (मुरादाबाद) उत्तरप्रदेश
४. आर्यसमाज मन्दिर सहजपुर बोघा,
अहमदाबाद (गुजरात)
५. दयानन्दमठ दीनानगर, जिला गुरदासपुर (पंजाब)
चलभाष : ०९४१७३-३६६७३

शब्द-संयोजक : **स्वस्ति कम्प्यूटर्स,** कैलाशनगर, दिल्ली-३१
दूरभाष : ०९२११३-६२७३३, ०९२५५९-३५२८९

मुद्रक : **राधा प्रेस,** कैलाशनगर, दिल्ली-११००३१

प्रकाशकीय

प्राचीन काल से ही यह वैदिक मान्यता रही है कि चारों वेद ज्ञान-विज्ञान की निधि हैं। महर्षि दयानन्द ने भी उसी मान्यता को स्थापित करते हुए आर्यसमाज के प्रथम नियम में कहा है कि वेद सब सत्यविद्याओं के पुस्तक हैं। यही कारण है कि प्राचीन काल के जितने भी विषय के ग्रन्थ मिलते हैं, उनके लेखक ऋषियों ने उनका मूलस्रोत वेद को ही घोषित किया है। जैसे—'बृहद्विमान शास्त्र' नामक ग्रन्थ में महर्षि भारद्वाज ने 'विमान विद्या' का स्रोत वेद को लिखा है। मनुस्मृति में 'समाज-व्यवस्था' का आयुर्वेद में 'चिकित्सा-विद्या' का आदिस्रोत वेद को ही माना है। इस प्रकार सभी सत्यविद्याएं वेदों में मूलरूप से विद्यमान हैं।

उसी परम्परागत प्राचीन मान्यता को विद्वान् लेखक पं० शिवशंकर शर्मा ने इस पुस्तक के द्वारा सिद्ध और पुष्ट किया है। ब्रह्माण्ड के सभी लोक पृथ्वी आदि 'गोल आकार' हैं; यह स्पष्ट, स्थापित वैदिक सिद्धान्त है। यही कारण है कि पृथ्वी आदि का नाम ही 'भूगोल' है। फिर भी इसका श्रेय पक्षपात के कारण अंग्रेजों ने गैलीलियो नामक वैज्ञानिक को दे डाला है। इसी प्रकार रामायण काल में पुष्पक विमान का स्पष्ट वर्णन आता है, किन्तु उसके आविष्कार का श्रेय पक्षपात-भावना के कारण राइट बन्धुओं का दिया जाता है।

इस पुस्तक के द्वारा उक्त सभी भ्रान्तियों का निराकरण हो सकेगा और प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का परिचय प्राप्त होगा। इस दृष्टि से विद्वान् लेखक की यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। आशा है पाठक इसको पढ़कर अपने प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को जानेंगे।

—आचार्य सत्यानन्द नैष्ठिक

विषय-सूची

वैदिक-विज्ञान

[प्रारम्भिक भूमिका]

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष ये छः वेदों के मुख्य अंग माने गये हैं। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व—मीमांसा और वेदान्त ये छः वेदों के उपांग कहे गये हैं। इतने से आप समझ सकते हैं कि तर्क, हेतु और उपपत्ति से बाहर वेद नहीं हैं। जैसे पृथ्वी पर के अन्यान्य धर्मग्रन्थ सुतर्क से, सुयुक्ति से और प्रसिद्ध विज्ञान शास्त्रों से भी डरते रहते हैं, अपने शिष्यों को चिताते रहते हैं कि तर्क करना शैतान का काम है, धर्म में केवल विश्वास ही उचित है इत्यादि। हाँ, यह परमोचित है कि परमात्मा में सब कोई विश्वास करें, परन्तु इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि मिथ्या को भी सत्य ही मान कर विश्वास करें। धर्मग्रन्थों के लेखक वा प्रचारक यद्यपि शुभेच्छु और मनुष्य हितकारी थे, परन्तु विज्ञानशास्त्र की ओर वे ध्यान नहीं दिया करते थे अतः उनके ग्रन्थों और उपदेशों में अनेक त्रुटियाँ और शतशः अशुद्धियाँ रह गईं। पीछे उनके अनुयायी उन अशुद्धियों को भी सत्य मानकर देशों में प्रचार करने-करवाने लगे। इस अन्धाधुन्ध के कारण देशों में महाक्षति हुईं। वेद किसी सम्प्रदाय के ग्रन्थ नहीं। इनमें बहुत स्वच्छ कथाएँ हैं। अतः ये तर्क व युक्ति से नहीं भागते। प्रत्युत पचासों स्थलों में उपदेश देते हैं कि तर्क करो, खोज करो, पूछो, तब ही तुम ज्ञानी बनोगे। एवमस्तु। मैं दो-चार उदाहरण यहाँ लिखूँगा जिनसे आपको प्रतीत होगा कि वे कैसे-कैसे गूढ़ विज्ञान को बतलाते हैं। प्रायः पृथिवी पर जितने सम्प्रदायी ग्रन्थ हैं उन सबमें पृथिवी का कुछ न कुछ वर्णन पाया जाता है, परन्तु वे सबके सब ही त्याज्य हैं, क्योंकि वे प्रत्यक्ष विज्ञान से विरुद्ध हैं। पृथिवी किस पर ठहरी हुई है। इसकी लम्बाई, चौड़ाई, उँचाई, मोटाई कितनी है। यह गोल या दर्पणाकार चिपटी है। जैसे किसी बर्तन का ऊर्ध्व भाग और अधोभाग होता है

क्या वैसा ही पृथिवी का भी कोई ऊपर का और कोई नीचे का भाग है। क्या हम ऊपर के भाग में बसते हैं और नीचे के भाग में असुर रहते हैं या भीतर से पृथिवी पोली है जहाँ असुर राक्षस निवास करते हैं? रात्रि और दिन क्यों होते हैं। ३६४ अहोरात्र के पश्चात् पुनः वही समय कैसे आता, चन्द्र क्यों घटता और बढ़ता, ग्रहण क्यों होता इत्यादि शतशः बातें प्रत्येक मनुष्य को जाननी चाहिए। यद्यपि इनमें से एक-एक विषय का एक-एक महान् शास्त्र है। आजकल इनकी महती उन्नति होती जाती है। पाठशालाओं में ये शास्त्र पढ़ाए भी जाते हैं, अतः इस विषय की यहाँ आवश्यकता नहीं थी। तथापि जिस कारण वर्तमान सम्प्रदायी ग्रन्थ तथा पुराण इस प्रकाशमय समय में भी महान्धकार ही फैला रहे हैं और वेदों को ही अपना मूल कारण बताते हैं, अतः वेदों से भी ये विषय दर्शाये जाएँ ताकि वेदों के माननेहारे सारे सम्प्रदायी ग्रन्थ सुधर जाएँ और उनके अनुयायी वैदिक पथ पर आकर कल्याण भागी बनें। इतना कहकर मैं अब अभीष्ट विषय का निरूपण करता हूँ।

[पं० शिवशंकर शर्मा 'काव्यतीर्थ']

पृथिवी का भ्रमण

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षा शचीभिर्वेद्यानाम्।
शुष्ण परि प्रदक्षिणिद् विश्वायवे निशिश्नथः॥

—ऋ० १०।२२।१४

क्षा=पृथिवी। पृथिवी के गौ, ग्मा, ज्मा आदि २१ नाम निघण्टु १।१ में उक्त हैं। इनमें एक नाम क्षा है। शची=कर्म, क्रिया, गति। निघण्टु में अपः, अप्रः आदि २६ नाम कर्म के हैं, इनमें शची का भी पाठ है। शुष्ण=यह नाम आदित्य अर्थात् सूर्य का भी है, यथा—"**शुष्णस्यादित्यस्यशोषयितुः**" निरुक्त ५।१६ पृथिवी पर के रस को सूर्य शोषण किया करता है, अतः सूर्य का नाम शुष्ण है। प्रदक्षिणित्=घूमती हुई। विश्वायवे=विश्वास के लिए। **अथमन्त्रार्थ**—(क्षा) यह पृथिवी (यद्) यद्यपि (अहस्ता) हस्तरहिता और (अपदी) पैर से ही शून्य है तथापि (वर्धत) बढ़ रही है अर्थात् हाथ-पैर न होने पर भी यह चल रही है। (वेद्यानाम्+शचीभिः) वेद्य=जानने योग्य, जो परमाणु उनकी क्रियाओं से प्रेरित होकर चल रही है अथवा स्वपृष्ठस्थ विविध पर्वत आदि पदार्थों और मेघादिकों की क्रियाओं के साथ-साथ घूम रही है। किसकी चारों तरफ प्रदक्षिणा कर रही है। इस पर कहते हैं (शुष्णम्+परि) सूर्य के परितः=चारों तरफ (प्रदक्षिणित्) प्रदक्षिणा करती हुई घूम रही है। आगे परमात्मा से प्रार्थना है कि (विश्वायवे+निशिश्नथः) हे परमात्मन्! हम मनुष्यों के विश्वास के लिए आपने ऐसा प्रबन्ध रचा है। भाष्यकार सायण के समय में पृथिवी का भ्रमण-विज्ञान सर्वथा विलुप्त हो गया था, अतः ऐसे-ऐसे मन्त्र के अर्थ करने में इनकी बुद्धि चकरा जाती है। सायण कहते हैं—

यद्वा शुष्णस्याच्छादनार्थं हस्तपादवर्जिता काचित्पृथिवी वेदितव्यानामसुराणां मायारूपैः कर्मभिः शुष्णमसुरं वेष्टित्वा प्रदक्षिणं यथा भवति तथाऽवस्थिताऽवर्धत तदानी तां मायोत्पा-दितां पृथिवीं विश्वायवे सर्वव्यापकस्य मरुद्गणस्य प्रवेशनार्थं

निशिश्नथः ॥

भाव इसका यह कि असुरों ने अपनी माया से एक पृथिवी बनाई और बनाकर कहा कि शुष्ण एवं इन्द्र का युद्ध हो रहा है, इस हेतु तू शुष्ण की चारों तरफ वेष्टित हो प्रदक्षिण करती रहो जिससे इन्द्र यहाँ न पहुँच सके। इन्द्र को यह खबर मालूम हुई। मरुद्गणों को पहले वहाँ भेजा। वे वहाँ नहीं पहुँच सके। तब इन्द्र ने आकर उस पृथ्वी को ताड़ना दी, वह भाग गई। मरुद्गण वहाँ बैठ शुष्ण को छिन्न-भिन्न करने लगे। अब आप समझ सकते हैं कि सीधा-साधा अर्थ छोड़ ये भाष्यकार कैसा अज्ञातार्थ लिखते हैं। अब द्वितीय ऋचा पर ध्यान दीजिये, जिससे विस्पष्ट हो जाता है कि केवल पृथिवी ही नहीं किन्तु पृथिवी जैसे सकल ग्रह नक्षत्र आदि भी स्थिर नहीं हैं।

कतरा पूर्वा कतरा परायोः कथा जाते कवयः को विवेद।
विश्वंमना विभ्रतोयद्धनाम विवर्त्तेते अहनी चक्रियेव॥

—ऋ० १।१८५।१

इस ऋचा के द्वारा अगस्त्य ऋषि पूछते हैं कि (अयोः) इस पृथिवी और द्युलोक में से (कतरा+पूर्वा) कौन सा आगे है और (कतरा+परा) कौन सा पीछे है या कौन सा ऊपर और कौन सा नीचे है। (कथा+जाते) कैसे ये दोनों उत्पन्न हुए (कवयः+कःवि+वेद) हे कविगण ? इसको कौन जानता है। इसका स्वयं उत्तर देते हैं। (यद्+ह+नाम) जो कुछ पदार्थ जात इन दोनों से सम्बन्ध रखता है। उस (विश्वम्) सबको ये दोनों (बिभ्रतः) धारण कर रहे हैं अर्थात् सब पदार्थ को अपने साथ लेकर (वि+वर्त्तेते) घूम रहे हैं, (अहनी+चक्रिया+इव) जैसे दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन आता ही रहता है तथा जैसे रथ का चक्र ऊपर-नीचे होता रहता है तद्वत् ये दोनों द्यावा-पृथिवी एक-दूसरे के ऊपर-नीचे हो रहे हैं। अतः आगे-पीछे का इसमें विचार नहीं हो सकता। जब पृथिवी और सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, दूर-दूर भ्रमण कर रहे हैं तब यह नहीं कहा जा सकता है कि इन दोनों में ऊपर-नीचे कौन हैं ? यह ऋचा चक्र के दृष्टान्त से विस्पष्ट कर देती है कि पृथिवी अवश्य घूम रही है। अब तृतीय ऋचा लिखता हूँ जो और भी विस्फुट उदाहरण पृथिवी के भ्रमण का है।

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत्।
अश्वमिवाधुक्षद्धु निमन्तरिक्षमतूर्ते बद्ध सविता समुद्रम्॥

—ऋ० १०।१४९।१

(सविता) सूर्य (यन्त्रैः) रज्जु के समान अपने आकर्षण से (पृथिवीम्) पृथिवी को (अरम्णात्) बाँधता है और (अस्कम्भने) अनारम्भ, निराधार आकाश में (द्याम्+अदृंहत्) अपने परितः स्थित द्युलोकस्थ अन्यान्य ग्रहों को भी दृढ़ किये हुए हैं। आगे एक लौकिक उदाहरण देकर समझाते हैं, (अतूर्ते) टूटने के योग्य नहीं जो आकर्षणरूप रज्जु है उसमें (बद्धम्) बंधे हुये (धुनिम्) नाद करते हुए (समुद्रम्) बड़े जोर से भागने हारे, पृथिवी, शनि, शुक्र, मंगल, बुध आदि ग्रह रूप जो लोक है उसको (अन्तरिक्षम्) निराधार आकाश में (अश्वम्+इव+अधुक्षत्) घोड़े के समान घुमा रहा है अर्थात् जैसे नूतन घोड़े को शिक्षित करने के लिए लगाम पकड़ सवार खड़ा हो जाता और उस घोड़े को अपनी चारों तरफ घुमाया करता है। वैसा ही यह सूर्यरूप सवार अश्व सदृश पृथिव्यादि लोक को अपनी चारों तरफ घुमा रहा है। इससे बढ़कर विस्फुट उदाहरण क्या हो सकता है, अतः उपरिष्ठ मन्त्रों से दो बातें सिद्ध हैं कि—

१—पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है और

२—सूर्य के आकर्षण से यह इधर-उधर नहीं हो सकती, अपने मार्ग को छोड़ अणुमात्र भी खिसक नहीं सकती। अन्तरिक्षम् सप्तमम्यर्थ में प्रथमा है, समुद्र=समुद्द्रवति=जो बहुत जोर से दौड़ता है।

सूर्य की परिक्रमा कितने दिनों में कर लेता है इस पर कहते हैं।

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलाश॥

—ऋ० १।१६४।४८

(चक्रम्) यहाँ वर्ष ही चक्र है, क्योंकि यह रथ के पहिया के समान क्रमण अर्थात् पुनः-पुनः घूमता रहता है। उस चक्र में (द्वादश+प्रधयः) जैसे चक्र में १२ छोटी-छोटी अरे प्रधि=कीलें हैं। वैसे सम्वत्सर में बारह मास अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन होते हैं। (त्रीणि+नभ्यानि) इसके

नभ्य अर्थात् नाभि स्थान में रहने हारे दारु विशेष समान ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त तीन ऋतु हैं। (कः+उ+तत्+चिकेत) इस तत्त्व को कौन जानता है। (तस्मिन्+ साकम्+शंकवः) उस वर्ष में कीलों सी (त्रिशता+षष्ठिः) ३०० और ६० दिन (अर्पिताः) स्थापित हैं। (न+चलाचलाशः) वे २६० दिन रूप कीलें कभी विचलित होने वाली नहीं हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक वर्ष में (३६०) तीन सौ साठ दिन होते हैं। पृथिवी के भ्रमण से ही वे दिन बनते हैं, अतः ३६० दिन में पृथिवी सूर्य की परिक्रमा कर लेती है। पुनः इसी विषय को दूसरे तरह से कहते हैं।

द्वादशारं न हि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंसतिश्चातस्थुः ॥

—ऋ० १।१६४।११

(ऋतस्य) सत्य स्वरूप काल का (चक्रम्) सम्वत्सर रूप चक्र (द्याम्+परि) आकाश में चारों तरफ (वर्वर्ति) घूम रहा है (द्वादशारम्) जिसमें मास रूप १२ अर हैं। (नहि+तत्+जराय) वह चक्र कभी जीर्ण नहीं होता। (अग्ने) हे परमात्मन्! आपने कैसा अद्‌भुत प्रबन्ध रचा है। (अत्र) इस चक्र में (पुत्राः) पुत्र के समान (सप्त+शतानि+ विशंतिः+च आतस्थुः) ७०० और २० स्थिर हैं। वर्ष में ३६० दिन और ३६० रात्रि मिलाकर ७२० अहोरात्र होते हैं। इतने अहोरात्र में पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। यद्यपि ३६५ दिनों के लगभग में यह पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है। तथापि यह चन्द्र मास के हिसाब से ३६० दिन कहे गये हैं। चन्द्रमास में एक अधिक मास मानकर हिसाब पूरा किया जाता है। इस अधिक मास का भी वर्णन वेद में पाया जाता है।

पृथिवी गोल है

यद्यपि देखने से प्रतीत होता है कि दर्पण के समान पृथिवी सम अर्थात् चिपटी है तथापि अनेक प्रमाणों से पृथिवी की आकृति गेंद या कदम्ब फल के समान गोल है, यह सिद्ध होता है। अपने संस्कृतशास्त्रों में इसी कारण इसका नाम ही भूगोल रखा है। यदि कोई आदमी ५० कोश का ऊँचा हो तो झट से उसको इसकी गोलाई मालूम होने लगे। इस पृथिवी के ऊपर हिमालय पर्वत भी गृह के ऊपर चींटी के समान

है, अतः इसकी गोलाई हम मनुष्यों को प्रतीत नहीं होती।

१—इसके समझने के लिए समुद्र स्थान लीजिए। समुद्र सैकड़ों कोश तक चौड़ा होता है। जल की सतह बराबर हुआ करती है। यदि दर्पणाकार पृथिवी होती तो समुद्र में अति दूर आता हुआ भी जहाज दीखना चाहिए और जहाज के नीचे से ऊपर तक सब भाग एक बार भी दीख पड़े, किन्तु ऐसा होता नहीं। अति दूरस्थ जहाज तो दीखता ही नहीं। ज्यों-ज्यों समीप आता जाता है त्यों-त्यों प्रथम जहाज का ऊपर का शिर दीखता है, फिर मध्य भाग तब नीचे का भाग। अब आप विचार कर सकते हैं कि जल की बराबर सतह पर ऐसी विषमता क्यों? इसका एकमात्र कारण पृथिवी की गोलाई है। पृथिवी की गोलाई के कारण जहाज के नीचे का भाग छिपा रहता है।

२—पुनः यदि किसी स्थान से आप किसी एक तरफ प्रस्थान करें और सीधे चलते ही जाएँ तो पुनः उसी स्थान पर पहुँच जाएँगे जहाँ से आपने प्रस्थान किया था। इसका भी कारण गोलाई है।

३—चन्द्र के ऊपर पृथिवी की छाया पड़ने से चन्द्र ग्रहण होता है। वह छाया गोल दीखती है, इससे सिद्ध है कि पृथिवी गोल है, इस सम्बन्ध में अपने शास्त्र का सिद्धान्त देखिये। मैंने प्रारम्भ में ही कहा है कि ज्योतिष शास्त्र वेद का एक अंग है। मुहर्त्तचिन्तामणि, वृहज्जातक, लघुजातक आदि नहीं किन्तु गणितशास्त्र ही ज्योतिष है। जिसमें पृथिवी से लेकर ज्योतिःस्वरूप सूर्य तक का पूरा-पूरा हिसाब सब प्रकार से हो, वह ज्योतिष शास्त्र है। जैसे व्याकरण शास्त्र बहुत दिनों से चले आते थे पश्चात् पाणिनी ने एक सर्वांग सुन्दरव्याकरण बनाया तत्पश्चात् वैसा व्याकरण अभी तक नहीं बना है। वैसे ही ज्योतिष शास्त्र अति प्राचीन है। सबसे पिछले आचार्य भास्कराचार्य ने लीलावती, बीजगणित सिद्धान्त-शिरोमणि आदि अनेक ग्रन्थ ज्योतिष शास्त्र के रचे। वे ही आजकल अधिक पठन-पाठन में विद्यमान हैं। शब्द कल्पद्रुम नाम के कोश में भूगोल शब्द के ऊपर एक अच्छा लेख दिया हुआ है। भास्कराचार्यकृत सिद्धांतशिरोमणि के भी अनेक श्लोक यहाँ लिखे हुए हैं। मैं इस समय इसी कोश से कतिपय श्लोक उद्धृत करता हूँ। मैं इस समय भ्रमण कर रहा हूँ। अतः मूल ग्रन्थ मेरे पास नहीं है। आप लोग मूल ग्रन्थ में प्रमाण देख लेवें। भारतवर्ष में सिद्धांतशिरोमणि इतना

प्रसिद्ध है कि इसके बिना कोई ज्योतिषी नहीं बन सकता। इसका अनुवाद अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में हुआ है। शंका समाधान करके भास्कराचार्य सिद्ध करते हैं कि पृथिवी गोल है।

यदि समा मुकुरोदरसंनिभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः ॥ उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमु नरै रमरै रिव नेक्ष्यते ॥ १ ॥ यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते ॥ उदगयन्ननुमेरु रथांशुमान् कथमुदेति स दक्षिण भागतः ॥

अर्थ—यदि भगवती पृथिवी दर्पण के समान समा अर्थात् समसतह वाली है तो पृथिवी के ऊपर बहुत दूर भ्रमण करते हुए सूर्य को जैसे अमरगण सदा देखा करते हैं वैसे ही मनुष्य भी सदा सूर्य को क्यों नहीं दीखते अर्थात् पृथिवी पर किस प्रकार प्रातः, मध्याह्न, सायं और रात्रि होती है। इससे प्रतीत होता है कि पृथिवी सम नहीं है। जैसे ऊँचे पर्वत के पूर्वभाग की सीध में वा उसी पर रहने वाले पदार्थ पश्चिमभागस्थ पुरुष को नहीं दीखते तद्वत् पृथिवी के एक भाग में रहने वाला पुरुष पृथिवी के रुकावट के कारण सूर्य को नहीं दीखता। घूमती हुई पृथिवी का जितना-जितना भाग सूर्य के सामने पड़ता जाता है उतना-उतना भाग सूर्य की किरणें पड़ने से दिन कहाता है, इसी प्रकार इसके विरुद्ध रात्रि। यदि यह कहो कि वह सूर्य सुमेरु पर्वत के पीछे चला जाता है इस कारण नहीं दीखता तो यह ठीक नहीं, क्योंकि इस अवस्था में वह सुमेरु ही दीख पड़े किन्तु वह दीखता नहीं, अतः यह कथन असत्य है और इसमें द्वितीय हेतु यह है कि तब उत्तरायण और दक्षिणायण भेद भी कभी नहीं होने चाहिएँ, क्योंकि सूर्य समानरूप से सुमेरु की परिक्रमा सब दिन करता है, यह आपका सिद्धान्त है तब ये दो अयन क्यों होते? अतः सुमेरु पर्वत निशा का कारण नहीं, पुनः वही शंका बनी रही कि मनुष्य को सर्वदा समान रूप से सूर्य क्यों नहीं दीखता? इससे सिद्ध है कि पृथिवी गोल है।

यदि पृथिवी गोल है तो हमें वैसी क्यों नहीं दीख पड़ती। उसका समाधान पूर्व में लिख आया हूँ। भास्कराचार्य भी वैसा ही कहते हैं यथा—

समोयतः स्यात् परिधेः शतांशः पृथिवी च पृथिवी नितरां तनीयान्॥ नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः

सा ।।

जिस कारण पृथिवी बहुत ही विस्तीर्ण है, अतः उसके शतांश भाग सम हैं। मनुष्य बहुत ही छोटा है। इस कारण इसको सम्पूर्ण पृथिवी सम ही प्रतीत होती है।

पृथिवी का ऊपर और नीचे का भाग

यद्यपि छोटे से छोटे पदार्थ का भी ऊपर और नीचे भाग माना जा सकता है। सेब और कदम्ब फल का भी कोई भाग नीचे का माना ही जाता है। वैसा ही पृथिवी का भी हिसाब हो सकता है किन्तु आश्चर्य यह है कि पृथिवी के सामने मनुष्य जाति इतनी छोटी है कि इसकी आकृति नहीं के बराबर है। इसी हेतु पृथिवी के अर्धगोलक पर रहने वाला अन्य अर्धगोलक पर रहने वाले को अपने से नीचे समझता है, किन्तु वे दोनों एक ही सीध में हैं, नीचे-ऊपर नहीं। जैसे अमेरिका देश पृथिवी के अर्धगोलक में है और द्वितीय अर्धगोलक में यूरोप, एशिया देश हैं। ये दोनों एक सीध में होने पर भी एक-दूसरे के ऊपर-नीचे प्रतीत होते हैं। भास्कराचार्य इस पर कहते हैं—

योयत्र तिष्ठत्यवनीतलस्थमात्मानमस्या उपरिस्थितञ्च। स मन्यतेऽतः कुचतुर्थसंस्था मिथश्च ते तिर्य्यगिवामनन्ति ।।

पृथिवी के किसी भाग में जो जहाँ है वह अपने को वहाँ ऊपर ही मानता है और दूसरे भागस्थ पुरुष को नीचे समझता है।

पृथिवी का आधार

अब यह तो विस्पष्ट हो गया कि जब भूमि घूम रही है तब इसके आधार की आवश्यकता नहीं। धर्माभास पुस्तकों में यह एक अति तुच्छ प्रश्न और समाधान है। मुझे आश्चर्य होता है कि इन ग्रन्थकर्त्ताओं ने एकाग्र हो कभी इस विषय को न विचारा और न सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रों की ओर ध्यान ही दिया। उन्हें यह तो बड़ी चिन्ता लगी कि यदि पृथिवी का कोई आधार न हो तो यह कैसे ठहर सकती, किन्तु इन्हें यह नहीं सूझा कि यह महान् सूर्य निराधार आकाश में कैसे घूम रहा है, हमारे ऊपर क्यों नहीं गिर पड़ता। इन लाखों कोटियों ताराओं को कौन असुर पकड़े हुए है। हमारे शिर पर गिर कर क्यों नहीं चूर्ण-चूर्ण कर देता। हाँ, इसका भी उपाय वा समाधान इन सम्प्रदायियों ने अच्छा

गढ़ा। जब निर्बुद्धि शिष्यों ने पूछा कि यह सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र आदि क्यों नहीं गिरते तो इसका उत्तर दिया कि सूर्य साक्षात् भगवान् हैं, ये चेतन देव हैं। रथ पर चढ़कर पृथिवी की परिक्रमा कर रहे हैं। यहाँ से पुण्यवान पुरुष मरकर सूर्यलोक में निवास करते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा आदि भी चेतन देव हैं। पितृगण यहाँ अमृतपान करते हुए आनन्द भोग रहे हैं इत्यादि गप्प कहकर शिष्यों को समझा दिया, किन्तु पुनः अन्ध शिष्यों ने यह नहीं पूछा कि वे रथ किस-किस आधार वा मार्ग पर चल रहे हैं। प्रश्न किए भी गये हों तो ऐसे सम्प्रदायियों को समाधान गढ़ने में कितनी देर लगती है। झट से कह दिये होंगे कि अरे! ये सब देव हैं। वे स्वयं उड़ा करते हैं जो चाहे सो कर लें, इनको क्या पूछते हो ये बड़े सामर्थी हैं। विचारी रह गई पृथिवी। यह देवी नहीं और चेतन भी नहीं। यदि पृथिवी चेतन देवी सूर्यादिवत् मानी जाती तो इसके आधार की भी चिन्तारूप नदियों में वे गोते न खाते। जिसकी आज्ञा से सूर्य-चन्द्र आदि नियत मार्ग पर चल रहे हैं, नियत समय पर उदित और अस्त होते, इसी की आज्ञा से यह पृथिवी ठहरी हुई है, यदि इतना भी वे विचार कर लेते तो इतने धोखे न खाते। ''अतिपरिचया-दवज्ञा'' अति परिचय से निरादर होता है। भूमि पर सम्प्रदायी निवास करते हैं, प्रतिदिन देखते हैं, इसको देव वा देवी कहकर शिष्यों को बहला नहीं सकते थे। अतः अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार इसके अनेक आधार गढ़ लिए। किसी ने कहा साँप के शिर के ऊपर है, किसी ने कहा कि कछुए की पीठ पर स्थापित है, किसी ने कहा कि नौका के समान जल के ऊपर तैर रही है। इस प्रकार अनेक कल्पनाएँ कर अपने-अपने शिष्यों को सम्बोधित करते गए। किन्तु किसी सम्प्रदायी को इसका सत्यभेद मालूम ही नहीं था। वे कैसे बतलाते। वेद ही सत्य भेद दिखलाते हैं। शिष्यों ने यह नहीं पूछा कि यदि साँप पर पृथिवी है तो वह साँप किस पर है। ''नात्र कार्या विचारणा, नात्र कार्या विचारणा'' ऐसी बातें कह मन को संतोष देते रहे। भास्कराचार्य ने उन सब गप्पों का अच्छा खण्डन किया है, परन्तु ये आचार्य पौराणिक समय में हुए हैं। पृथिवी घूमती है, यह बात इनके समय में नहीं मानी जाती थी, अतः पृथिवी को ये महात्मा भी अचल ही मानते थे और इसके चारों तरफ सूर्य ही घूम रहा है ऐसा ही समझते थे, किन्तु वेद

से यह विरुद्ध बात है। पृथिवी ही सूर्य के चारों तरफ घूमती है। पृथिवी से १३०००००० तेरह लक्ष गुणा सूर्य बड़ा है। सूर्य के सामने पृथिवी एक अति तुच्छ चींटी के बराबर है। तब कब सम्भव है कि एक अति तुच्छ चींटी की परिक्रमा पर्वत करे। अब आधार के विषय में भास्करीय खण्डन परक श्लोक सुनिए।

मूर्तो धर्त्ता चेद्धरित्र्यास्तदन्य स्तस्याप्यन्योऽप्येव मत्रानवस्था। अन्त्ये कल्प्या चेत् स्वशक्तिः किमाद्ये किन्नो भूमिः साष्टमूर्तेश्च मूर्तिः॥

अर्थ—यदि पृथिवी के पकड़नेहारा कोई शरीर धारी है तो उसका भी कोई अन्य पकड़नेहारा होना चाहिए। यदि कहो उसका भी पकड़नेहारा है तो पुनः उसका भी कोई पकड़नेहारा होना उचित है। इस प्रकार अनवस्था दोष होगा। इस दोष से ग्रस्त होकर आपको किसी अन्तिम धर्ता के विषय में कहना पड़ेगा कि वह अपनी शक्ति पर स्थित है। तो मैं पूछता हूँ कि आदि में पृथिवी को ही अपनी शक्ति पर ठहरी हुई क्यों नहीं मान लेते, क्योंकि यह भूमि भी महादेव की अष्ट मूर्तियों में से एक मूर्ति है तो वह अपनी शक्ति पर क्यों नहीं ठहर सकती?

अभी हमने आपसे कहा है कि सूर्यादिवत् इसको भी यदि चेतन और स्वशक्तिसम्पन्न मान लेते तो इतनी चिंता न करनी पड़ती, किन्तु समीप रहने के कारण पृथिवी को वैसी न मनवा सके। भास्कराचार्य वही बात कहते हैं कि यह भूमि भी महादेव की एक मूर्ति है तब वह क्या अपनी शक्ति पर ठहर नहीं सकती? इसको पुनः विस्फुट कर देते हैं—

यथोष्णतार्कानलयोश्च शीतता विधौ द्रुतिः के कठिनत्व मश्मनि। मरुच्चलो भूरचला स्वभावतो यतो विचित्राः खलु वस्तुशक्तयः॥

जैसे स्वभाव से ही सूर्य और अग्नि में उष्णता, चन्द्रमा में शीतलता, जल में द्रति (वहनशीलता), शिला में कठोरता है और जैसे वायु चलता है वैसे ही स्वभावतः पृथिवी अचला है, क्योंकि वस्तुशक्तियाँ नाना प्रकार की हैं। अतः यह पृथिवी स्वशक्ति के ऊपर स्थित होकर अचला है, यह कौन सी आश्चर्य की बात है। भास्कराचार्य ऐसे ज्योतिविद् होने पर भी पृथिवी को अचला मानकर कैसी गलती फैला गये हैं। इतना ही नहीं, ये कहते हैं कि रवि, सोम, मंगल, बुध,

बृहस्पति, शुक्र, शनि आदि ग्रह और ये नक्षत्र मण्डल सब ही इसी पृथिवी के परितः स्थित हैं और यह भूमिमंडल अपनी शक्ति से स्थित है; यथा—

भूमेः पिण्डः शशांकज्ञकविरविकुजेज्यार्कि नक्षत्रकक्षा वृत्तैर्वृत्तो वृतः सन् मृदनिलसलिल व्योमतेजोमयोऽयम्॥ नान्या-धारः स्वशक्त्या वियति च नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे निष्ठं विश्वञ्च शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समन्तात्॥

इसका कारण यह है कि वे वैदिक विज्ञान की ओर नहीं गये अथवा इस ओर इनका ध्यान नहीं गया। यह कितनी अल्पज्ञता है कि सूर्य-चन्द्र आदि को चल और पृथिवी को अचला मानें। सूर्य-चन्द्र को उदित और अस्त होते देख मान लिया कि यह सब चल रहे हैं। पृथिवी की गति इन्हें मालूम नहीं हुई। रेल की गति जैसे एक अति क्षुद्र चींटी को मालूम नहीं होती होगी, अतः पृथिवी को अचला कहने लगे। जब हम इस बात की समालोचना करते हैं तो यही कहना पड़ता है कि हमारे पूर्वज आचार्य सूक्ष्मता की ओर दूर तक न पहुँच सके और न वेदों का पूरा मनन ही किया। एवमस्तु—

वेदों में पृथिवी के नाम

गौ, ग्मा, ज्मा, क्ष्मा, क्षा, क्षमा, क्षोणि, क्षिति, अवनि, उर्वी, मही, रिपः, अदिति, इला, निर्ऋति, भू, भूमिः, गातुः, गोत्रा। इत्येक—विंशतिः पृथिवीनामधेयानि। —निघण्टु। १। १

ये २१ नाम पृथिवी के हैं। इनके प्रयोग वेदों में आया करते हैं। इनमें से एक भी शब्द नहीं जो पृथिवी के अचलत्व का सूचक हो जब पृथिवी को अचल मानने लगे तो संस्कृत कोश में पृथिवी के नामों के साथ अचला, स्थिरा आदि शब्द भी आने लगे "**भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा**" अमरकोश। इससे सिद्ध होता है कि वैदिक समय में पृथिवी स्थिरा नहीं मानी जाती थी। वाचक शब्दों से भी विचारों का बहुत पता लगा है। जिस समय जैसा विचार उत्पन्न होता है शब्द भी तदनुकूल बनाए जाते हैं। जैसे आर्ष ग्रन्थों में ब्राह्मण के लिए मुखज, क्षत्रिय के लिए बाहुज, वैश्य के लिए ऊरुज और शूद्र के लिए पज्ज, चरणज आदि शब्द का प्रयोग एक भी पाया नहीं जाता,

किन्तु अनार्ष ग्रन्थों में इनके शतशः प्रयोग हैं। इस समय में मुख आदि से ब्राह्मण आदि उत्पन्न हुए, ऐसा विचार प्रचलित हो चुका था, अतः शब्द भी वैसे आते हैं। इसी प्रकार यदि आर्ष समय में पृथिवी को स्थिरा मानते तो अवश्य वैसे शब्द भी आते। प्रत्युत इसके विरुद्ध गोशब्द आया है जिससे पृथिवी की गति मानी जाती थी। यह सिद्ध होता है। "**गच्छतीतिगौः**" चलनेहारे का नाम ही गौ है। यद्यपि यह अनेकार्थ है तथापि प्रायः चलायमान पदार्थ का ही नाम "गौ" रखा गया है। अब पृथिवी का गौ नाम क्यों रखा गया, जब यह विचार उपस्थित होता है तो यही कहना पड़ता है कि ऋषिगण पृथिवी को घूमती हुई मानते थे। तत्पश्चात् जब इनमें से यह विज्ञान लुप्त हो गया तब गो शब्द के अनेक धातु और व्युत्पत्तियाँ बतलाने लगे ।"गच्छन्ति प्राणिनोऽस्यामिति गौः यां गायन्ति जना सा गौः" वैदिक शब्दों का कोई दोष नहीं। अपने यहाँ जिज्ञासा के भाव के लोप होने से ऐसी दुर्मति फैली।

पृथिवी और बौद्ध सिद्धान्त

भपञ्जरस्य भ्रमणावलोकादाधारशून्या कुरिति प्रतीतिः। खस्थं न दृष्टंच गुरु क्षमातः खेऽधः प्रयातीति वदन्ति बौद्धाः॥ द्वौ द्वौ रवीन्दू भगणौ चतद्व देकान्तरौ तावुदयं व्रजेताम्। यदब्रु वन्नेव मनर्थवादान् ब्रवीम्यतस्तान प्रति युक्तियुक्तम्॥

बौद्ध कहते हैं कि आकाश में निराधार सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि को भ्रमण करते देखते हैं। इसी प्रकार पृथिवी निराधार ही है और कोई भी भारी पदार्थ आकाश में स्थिर नहीं रहता, अतः पृथिवी को भी स्थिर मानना उचित नहीं। तो यह नीचे को जा रही है जैसा मानना चाहिए। जैन और बौद्ध यह भी मानते हैं कि सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि दो-दो हैं, एक अस्त होता है तो दूसरा काम करता है। इस पर भास्कराचार्य कहते हैं कि इनका कथन अनर्थवाद है और इसमें यह युक्ति देते हैं; यथा—

भूःखेऽधः खलु यातीति बुद्धिर्बौद्ध ? मुधा कथम्। याता-यातञ्च दृष्ट्वापि खे यत्क्षिप्तं गुरु क्षितिम्॥

हे बौद्ध! ऐसी व्यर्थ बुद्धि आपको कहाँ से आई, जिससे आप

कहते हैं कि यह भूमि नीचे को जा रही है। यदि भूमि नीचे को गिरती हुई रहती तो आकाश में फेंके हुए पत्थर आदि लघु पदार्थ कभी नहीं पुनः लौटकर पृथिवी को पाते, क्योंकि पृथिवी बहुत भारी होने से नीचे को अधिक वेग से जाती होगी और फेंके हुए पदार्थों का वेग उससे न्यून ही रहेगा, परन्तु क्षिप्त वस्तु पृथिवी पर आ जाती है, अतः पृथिवी आकाश के नीचे जा रही है यह मिथ्या भ्रम है और जो यह कहते हैं कि दो-दो चन्द्र-नक्षत्र आदि हैं सो ठीक नहीं, क्योंकि दिन में ही ये देख पड़ते हैं।

पृथिवी के ऊपर मनुष्यों का वास—यह भी एक महाभ्रम है कि हम भारतवासी तो पृथिवी के ऊपर बसते हैं और बलि राजा अपने असुर दलों के साथ पृथिवी के नीचे पाताल में राज्य करता है या नाग लोक कहीं पाताल में है। महाशयो! पाताल कोई देश नहीं जैसे यहाँ से हम नीचे भाग को पाताल समझते हैं। वैसे ही उस भाग के रहने हारे हमको पाताल में समझते हैं। भूमि के वास्तविक स्वरूप का बोध न होने से ऐसे-ऐसे कुसंस्कार उत्पन्न हुए हैं। पृथिवी के चारों तरफ मनुष्य बसते हैं और उन्हें सूर्य का प्रकाश भी यथासम्भव प्राप्त होता रहता है। एक ही समय में पृथिवी के भिन्न-भिन्न भाग में भिन्न समय रहता है। जब अर्ध भाग में दिन रहता है तब अन्य अर्ध भाग में रात्रि होती है। इस विज्ञान को हमारे पूर्वज अच्छी प्रकार जानते थे; यथा—

लङ्कापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्तदा दिनार्द्धं यमकोटिपुर्याम्।
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव॥

जिस समय लंका में सूर्य का उदय होता है उस समय यमकोटि नामक नगर में दोपहर, नीचे सिद्धपुरी में अस्तकाल और रोमक में रात्रि रहती है।

इससे प्रतीत होता है कि पृथिवी पर के सब मनुष्यों में पहले भी आजकल के समान व्यवहार होता था। ज्योतिष शास्त्र की बड़ी उन्नति थी और पृथिवी के ऊपर चारों तरफ मनुष्य वास करते हैं, हम विज्ञान को भी जानते थे।

❑❑

आकर्षण

वेदों में आकर्षण शक्ति की भी चर्चा है। लोग कहते हैं कि यह नूतन विज्ञान है। यूरोपवासी सरऐसेकन्यूटनजी ने प्रथम इसको जाना तब से यह विद्या पृथिवी पर फैली है, परन्तु यह बात नहीं। भारतवर्ष में इसकी चर्चा बहुत दिनों से विद्यमान है और चुम्बक-लोह को देख सर्वपदार्थगत आकर्षण का अनुमान किया गया था। इसका अभी तक एक प्रमाण यह है कि सिद्धान्त शिरोमणि नाम के ग्रन्थ में भास्कराचार्य ने एक प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है, वह यह है—

आकृष्टशक्तिश्च मही तया यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुखी-करोति। आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् कुरियं प्रतीतिः॥

सर्वपदार्थगत एक आकर्षण शक्ति विद्यमान है, जिस शक्ति से यह पृथिवी आकाशस्थ पदार्थ को अपनी ओर करती है और जो यह खींच रही है वह गिरता मालूम होता है अर्थात् पृथिवी अपनी ओर खींच कर आकाश में फेंकी हुई वस्तु को ले आती है, इसको लोक में गिरना कहते हैं। इससे विस्पष्ट है कि भास्कराचार्य्य से बहुत पूर्व यह विद्या देश में विद्यमान थी। आर्य्यभट्टीय नामक ज्योतिष शास्त्र में भी इसका वर्णन आया है। अब मैं वेदों की दो-एक ऋचाएँ यहाँ लिखता हूँ, जिससे सब संशय दूर हो जाएँगे—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो नियेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

—ऋ० १।३५।२

कृष्ण=आकर्षणशक्ति युक्त। रज=लोक 'लोका रजांस्युच्यन्ते' निरुक्त, पृथिवी आदि लोक का नाम रज है। हिरण्यय=हिरण्यपाणि आदि शब्द बहुत आते हैं। अपनी ओर जो हरण करे, खींच लावे, वह हिरण्य कहाता है। जिस कारण सूर्य का रथ अर्थात् सूर्य का समस्त शरीर अपने परितः पदार्थों को अपनी ओर खींचता है, अतः यह रथ हिरण्यय कहाता है। **अथ मन्त्रार्थ**—(सविता+सूर्य) (कृष्णेन+रजसा) आकर्षण शक्ति युक्त पृथिवी, बुध, बृहस्पति आदि लोकों के

साथ (वर्त्तमानः) वर्त्तता हुआ। (अमृतम्+मृतम्+च) अमृत जो पृथिवी आदि लोक। मृत जो पृथिवी आदि लोकों में रहने वाले शरीरधारी जीव इन दोनों को (आनिवेशयन्) अपने-अपने कार्य में लगाते हुए (देवः) यह महान् देव (हिरण्ययेन+ रथेन) हिरण्मय=अपनी ओर हरण करने वाले रथ के द्वारा (भुवनानि पश्यन्) परितः स्थित भुवनों को मानों देखता हुआ (आयाति) निरन्तर आवागमन कर रहा है॥ २।

इस ऋचा में कृष्ण शब्द दिखलाता है कि सर्वपदार्थ गत आकर्षण शक्ति है। पृथिवी अपनी ओर तथा सूर्य अपनी ओर खींचते हुए विद्यमान हैं, अतः सूर्य के ऊपर पृथिवी गिरकर नष्ट नहीं होती। सूर्य पृथिवी की अपेक्षा करीब १३००००० लक्ष गुणा बड़ा है और इस सौर्य जगत का अधिपति भी वही है। इसलिये इसमें मध्याकर्षण शक्ति भी बहुत है, इसमें हेतु की आवश्यकता नहीं। अतएव वेद में सूर्य के नाम ही कृष्ण आया है, क्योंकि वह अपनी ओर पृथिवी आदि भुवनों को खींचे हुए यथास्थिति रखे हुए है।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।
ते आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते॥

—ऋ० १। १६४। ४७

अर्थ—(हरयः+सुपर्णाः) हरण करने वाली सूर्य की किरण (नियानं+कृष्णम्) नियमपूर्वक चलने वाले कृष्ण अर्थात् आकर्षण शक्ति युक्त सूर्य की ओर (अपः+वसाना) साथ जल लेकर (दिवम्+उत्पतन्ति) आकाश में ऊपर उठती हैं अर्थात् जब सूर्य से निकल कर किरण पृथिवी पर आती हैं तो मानों पृथिवी पर के जल लेकर फिर सूर्य के निकट पहुँचती हैं। यह एक आलंकारिक वर्णन है। (ते) वे सूर्य किरण (ऋतस्य+सदनात्) सूर्य के भवन से (आ+अववृत्रन्) आवागमन करती ही रहती हैं। (आत्+इत्) तब ही (घृतेन+पृथिवी+विउद्यते) जल से पृथिवी सींची जाती है॥ ४७॥

यहाँ यद्यपि कृष्ण शब्द के अर्थ भिन्न-भिन्न भाष्यकारों ने भिन्न प्रकार से किए हैं, परन्तु प्रकरण देखने से ही सूर्य अर्थ प्रतीत होता है। वेदों में[१] 'विचर्षणि' शब्द भी सूर्य के लिए आया है। (वि+चर्षणि)

---

१. चर्षणि शब्द मनुष्य के नाम में भी आया है। कोई कहते हैं कि चर् धातु से चर्षणि बनता है, कोई इसको कृष् धातु से देवराज यज्वा का निर्वचन निघण्टु पर देखिए।

कृष् धातु से चर्षणि शब्द सिद्ध होता है। कृष् धातु का अर्थ प्रायः आकर्षण है। इसी से आकर्षण, आकृष्टि, कृष्ण आदि अनेक शब्द सिद्ध होते हैं। वेद के मन्त्र देखने से विस्पष्ट होगा।

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावा पृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति॥

—ऋ० १। ३५। ९

अर्थ—(हिरण्यपाणिः) जिसका पाणि=किरण। हिरण्य=हरणशक्ति-युक्त है। (विचर्षणिः) जो अत्यन्त आकर्षण शक्ति युक्त है। (सविता) वह सूर्य (उभे+द्यावापृथिवी) दोनों द्युलोक और पृथिवी लोक को (अन्तरीयते) अपने-अपने अन्तर में अर्थात् अपने-अपने अवकाश में स्थिति रखता है अर्थात् एक लोक को दूसरे लोक के साथ टक्कर खाने नहीं देता। (अमीवाम्+अपबाधते) और वह सूर्य सकल उपद्रवों को बाध करता है। (सूर्य्यम्+वेति) और वह सूर्य अपनी धुरी पर चल रहा है। सूर्यम्=द्वितीयार्थ में प्रथमा है। (कृष्णेन+रजसा) आकर्षण शक्ति युक्त तेज के साथ वह सूर्य (द्याम्+अभि+ऋणोति) द्युलोक के चारों तरफ व्यापक हो रहा है। पुनः—

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः॥

—ऋ० १। १६४। १३

(विश्वा+भुवनानि) सूर्य के चारों तरफ स्थित पृथिव्यादि सर्वलोक (तस्मिन्+चक्रे) उस चक्र के आधार पर (आ+तस्थुः) अच्छी प्रकार स्थित हैं। (पञ्चारे) जिस चक्र में ऋतुरूप पाँच अर हैं। (परिवर्तमाने) जो चक्र स्वयं ही घूम रहा है। (तस्य) उस चक्र का (भूरिभारः) बहुत भार वाला (अक्षः) चक्र के मध्य में वर्तमान धूर (न+तप्यते) पीड़ित नहीं होता और (सनात्+एव+ न+शीर्यते) सनातन है और कभी टूटता नहीं, (सनाभिः) वह चक्र बन्धन शक्ति युक्त है॥ १३॥

यह ऋचा अनेक वस्तु दिखलाती है। १—भुवनानि विश्वा सम्पूर्ण विश्व सूर्य के रथ पर स्थित है। यह सिद्ध करता है कि पृथिव्यादि लोकों से यह बहुत ही बड़ा है। २—भूरिभारः अब यह विचार उपस्थित होता है कि उस चक्र का रथ भूरिभार क्यों कहलाता है। इसका उत्तर

विस्पष्ट है कि जिस चक्र के ऊपर सम्पूर्ण भुवन स्थित हों, वह अवश्य ही भूरिभार होगा। यहाँ वास्तविक भार तो नहीं, किन्तु आकर्षण रूप भार ही इसके ऊपर अधिक है, इसलिये यह आलंकारिक वर्णन है। इतने भार रहने पर भी वह अक्ष न पीड़ित होता है, न टूटता है, क्योंकि वह सनातन है। ३—सनाभिः बन्धनार्थक णह धातु से नाभि बनता है। जैसे इस मानव शरीर का नाभि सम्पूर्ण शरीर को बाँधने वाला है वैसे ही वह सूर्य का चक्र पृथिवी आदि लोक-लोकान्तरों को बाँधने वाला है। इसलिए सनाभि पद यहाँ कहा गया है। अब यह स्वभावतः प्रश्न होता है कि क्या सूर्य कोई चेतन देव है ? क्या सूर्य को ऋषिगण चेतन देव मानते थे ? जो अपने हाथ में रस्सी लेकर सब लोक-लोकान्तरों को बाँधे हुए है। वे ऋषियों के भाव नहीं जानते अथवा ऋषियों के ऊपर कलंक लगा रहे हैं जो कहते हैं कि ऋषिगण सूर्यादि को चेतन मानते थे। वेद में पृथिवी के समान ही सूर्य एक जड़ पदार्थ माना गया है। इस अवस्था में पुनः शंका होती है कि सूर्य किस प्रकार से सर्व लोकों को बाँधे हुए है ? इसका उत्तर केवल यही हो सकता है कि अपनी आकर्षण शक्ति के द्वारा सूर्य अपने परितः स्थित भुवनों को यथा अवकाश में बाँधे हुए स्थित है। पुनः आगे की ऋचा से और भी विस्पष्ट हो जाएगा। यथा—

इरावती धेनुमति हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥

—ऋ० ७।९९।३

प्रथम इसमें द्यावा-पृथिवी सम्बोधित हुई हैं। द्यावापृथिवी ! आप दोनों (मनुषे) मननकर्त्ता जीव को (दशस्या) सदा दान देने हारी हैं। (इरावती) आप दोनों ही धनवान् (धेनुमती) गोमान् (सूयवसिनी) और शोभनधन-धान्योपत (भूतम्) होवें। इतना कहके अब आगे सूर्य और पृथिवी का सम्बन्ध दिखलाते हैं। (विष्णो) हे सूर्य ! आप (एते+रोदसी) इस द्युलोक और पृथिवी लोक को (व्यस्तभ्नाः) विविध प्रकार से रोके हुए हैं और (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) चारों तरफ से (मयूखैः) किरणों द्वारा (दाधर्थ) पकड़े हुए हैं।

१—**रोदसी**—द्यावा-पृथिवी का नाम है, जो रोकने हारी हों, वे रोदसी अर्थात् रोधसी। व्यस्तभ्नाः=वि+अस्तभ्नाः। इस ऋचा से अनेक

वार्ताएँ निःसृत होती हैं। प्रथम रोदसी कहने से सिद्ध है कि यह पृथिवी और द्युलोक भी रोधसी है अर्थात् अपनी ओर आकर्षण करने वाली है। २—**विष्णु**—यह नाम सूर्य का है। जब दोनों लोकों का सूर्य धारण करने हारा है तब इससे परिणाम यह निकलता है कि इसके परितः स्थित दोनों लोक छोटे और यह सूर्य बहुत बड़ा है। इस अवस्था में जो यह कहते हैं कि सूर्य ही पृथिवी की परिक्रमा करता है। यह कितनी बड़ी भूल है, क्या एक सरसों की परिक्रमा पर्वत करेगा। ३—**मयूखैः**—सूर्य अपनी किरणों से पृथिवी को धारण किए हुए है, इसका क्या भाव होगा। बहुत आदमी कहेंगे कि पृथिवी के ऊपर सूर्य किरण पड़ती रहती हैं, इसी से पृथिवी का धारण-पोषण होता है अन्यथा पृथिवी किसी काम की न होती। परन्तु यह बात नहीं, यहाँ दाधर्थ पद से धारणार्थ सिद्ध होता है जैसे कोई बैल को रस्सी से पकड़े। अब विचारना चाहिए कि पृथिवी को सूर्य किस शक्ति से पकड़े हुए है, निःसन्देह वह आकर्षण शक्ति है जिसके द्वारा अपने परितः स्थित अनेक लोकों को पकड़े हुए यह महान् सूर्य स्थित है। पुनः—

अनड्वान दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम्।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वी रनड्वान् विश्वं भुवनमाविवेश।

—अथर्व ४। ११। १

(अनड्वान्) यह सूर्य (पृथिवीम्+दाधार) पृथिवी को पकड़े हुए है। (अनड्वान्+उत+द्याम्+उरु अन्तरिक्षम्) सूर्य द्युलोक और विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को (दाधार) पकड़े हुए है। (अनड्वान्+प्रदिशः+ दाधार) अनड्वान् सब दिशाओं को पकड़े हुए है। (अनड्वान+षड्+ उर्वीः) अनड्वान् अन्यान्य छः पृथिवीयों को पकड़े हुए है। (विश्वम्+ भुवनम्+आविवेश) यह अनड्वान् सर्वत्र आविष्ट है।

यह अथर्ववेद की ऋचा अनेक वार्ताएँ विस्पष्ट रूप से निरूपण करती है। इसमें साफ है कि पृथिवी और द्युलोक का धारण कर्ता सूर्य है और षड्+उर्वी=उर्वी नाम पृथिवी का है। बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, अन्यान्य दो लोक और पृथिवी इन सबका सूर्य ही आकर्षण से धारण करता है, यह सिद्ध हुआ।

अनड्वान्—बहुत आदमी शङ्का करेंगे कि बैल को अनड्वान् कहते हैं। इससे तो पौराणिक सिद्धान्त ही सिद्ध होता है कि पृथिवी

को कोई बैल अपनी सींग पर रखे हुए है। उत्तर—यह भ्रम वेदों के न देखने से उत्पन्न हुआ है। यहाँ ही द्वितीय ऋचा ४। ११। में 'अनड्वानिन्द्रः' पद है, यहाँ अनड्वान् नाम इन्द्र अर्थात् सूर्य का है। प्रायः ऐसे-ऐसे स्थलों में जहाँ-जहाँ वृषभ (बैल) वाचक शब्द आए हैं, वे-वे सूर्य वाचक हैं। एक ही उदाहरण से विशद होगा।

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत्। —अथर्व ४।५।१

सहस्र सींग वाला बैल जो समुद्र से ऊपर आता है। इस ऋचा में देखते हैं कि सहस्र शृङ्ग वृषभ कहा गया है। निःसन्देह सहस्र सींग वाला बैल सूर्य ही है। किरण ही इसके हजारों सींग हैं, समुद्र शब्द आकाशवाची है। निघण्टु और निरुक्त देखिये।

चन्द्रमा

अब आकर्षण आदि विषय अधिक वर्णित हो चुके, मेरे अन्यान्य ग्रन्थ देखिये। अब कुछ चन्द्र के सम्बन्ध में वक्तव्य है। इस सम्बन्ध में भी धर्मग्रन्थ बहुत ही मिथ्या बात बतलाते हैं। १—यह चन्द्र अमृतमय है। उस अमृत को देवता और पितृगण पी लेते हैं, इसी कारण यह घटता-बढ़ता रहता है। पुराणों का गप्प तो यह है ही, परन्तु महाकवि कालिदास भी इसी असम्भव का वर्णन करते हैं—

पर्य्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः कलाक्षयः श्लाध्यतरोहि वृद्धेः।

२—कोई कहते हैं कि इस चन्द्रमा की गोद में एक हिरण बैठा है। इसी से इसमें लांछन दीखता है और इसी कारण इसको मृगाङ्क, शशी आदि नामों से पुकारते हैं। ३—यह अत्रि ऋषि के नयन से उत्पन्न हुआ है। कोई कहते हैं कि यह समुद्र से उत्पन्न हुआ। ४—पुराण कहते हैं कि दक्ष की अश्विनी, भरणी आदि सत्ताईस कन्याओं से चन्द्रमा का विवाह है, वे ही २७ नक्षत्र हैं। ५—यह सूर्य से भी ऊपर स्थित है। ६—इसी से चन्द्र वंश की उत्पत्ति है। ७—राहु इसको ग्रसता है, अतः चन्द्र ग्रहण होता है इत्यादि अनेक गप्प चन्द्र के विषय में कहे जाते हैं। यहाँ मैं संक्षेप से वेद के मन्त्र उद्धृत कर बतलाऊँगा कि वेद भगवान् इस विषय को किस दृष्टि से देखते हैं—

चन्द्रमा का प्रकाश

अथाऽप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रति दीप्यते तदेतेनोपेक्षितव्य मादित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवति। —निरुक्त २।७।

यास्काचार्य कहते हैं कि सूर्य की एक किरण चन्द्रमा के ऊपर सदा पड़ती रहती है। इससे यह जानना चाहिए कि चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य से होता है। पृथिवी के समान ही चन्द्रमा भी निस्तेज और अन्धकारमय है, जैसे पृथिवी के ऊपर जिस-जिस भाग में सूर्य की किरण पड़ती रहती है वहाँ-वहाँ दिन होता है। इसी प्रकार चन्द्रमा के ऊपर भी सूर्य की किरण पड़ती रहती है, अतः इसमें प्रकाश मालूम होता है। सूर्य की किरण न पड़ती तो चन्द्र सदा धुँधला प्रतीत होता।

इस अतिगहन विज्ञान का भी वेद में विविध प्रकार से वर्णन है। यास्काचार्य ने वेद का ही आशय लेकर उपर्युक्तार्थ प्रकट किया है और यहाँ ही एक-दो और प्रमाण देकर इसको बहुत पुष्ट किया है।

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टु रपीच्यम्। इत्था चन्द्रसो गृहे॥

—ऋ० १।८४।१५

(गोः) गमनशील (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के (अत्र+ह+गृहे) इसी गृह में (त्वष्टुः) सूर्य का (नाम) सुप्रसिद्ध ज्योति (इत्था) इस प्रकार (अपीच्यम्) अन्तर्हित अर्थात् छिपा हुआ रहता है। यह ऋचा सर्व सन्देह को दूर कर देती है। चन्द्रमा के गृह में सूर्य का प्रकाश छिपा हुआ है। इस वर्णन से तो विस्पष्ट सिद्ध है कि सूर्य के प्रकाश से ही चन्द्र प्रकाशित है। पुनः इसी अर्थ को अन्य प्रकार से वेद भगवान निरूपण करते हैं, वह यह है—

सोमो वधूयुरभव दश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्य्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताऽददात्॥

—ऋ० १०।८५।९।

सूर्य की कन्या से चन्द्रमा के विवाह का वर्णन यहाँ अलंकार रूप से किया गया है। सूर्य की प्रभा ही मानों सूर्य कन्या है। **अथ मन्त्रार्थ**—(सोमः) चन्द्रमा (वधूयुः) वधू की इच्छा वाला हुआ अर्थात् चन्द्रमा ने विवाह करने की इच्छा की। (उभौ+अश्विनौ+वरौ+आस्ताम्) इस बराती में अश्वी अर्थात् दिन और रात्रि देव बरात हुए। (यद्) जब (मनसा) मन के परम अनुराग से (पत्ये+शंसन्तीम्+सूर्याम्) पति के लिए चाह करती हुई सूर्या (अपनी कन्या को) सूर्य ने देखा तब (सविता+अददात्) सूर्य ने चन्द्र के अधीन सूर्या को कर दिया। इस आलंकारिक वर्णन से विशद हो जाता है कि चन्द्रमा का प्रकाश सूर्य से हुआ करता है। यह विषय भारत देश में इतना प्रसिद्ध हो गया था कि घर-घर इसको लोग जानते थे। काव्य नाटकों में भी इसकी चर्चा होने लगी। जो विषय अति प्रसिद्ध हो जाता है उसी का निरूपण कविगण अपने काव्यादि ग्रन्थों में किया करते हैं। कालिदास पौराणिक समय के विद्वान् थे, अतः अपने काव्यों को वैदिक और लौकिक दोनों सिद्धान्तों से भूषित किया है। जैसे पौराणिक गप्प लेकर कालिदास जी

ने कहा है कि देव और पितर चन्द्र का अमृत पीते रहते हैं, अतः चन्द्र की कला घटती-बढ़ती रहती है। वैसे ही वैदिक अर्थ को लेकर कहते हैं कि सूर्य के प्रकाश से चन्द्र प्रकाशित होता है; यथा—

पितुः प्रयत्नात् स समग्रसम्पदः शुभैः शरीरावयवैर्दिनेदिने।
पुपोष वृद्धिं सरिदश्वदीधितेरनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमा।

—रघुवंश ३। २२

सम्पूर्ण धनधान्य युक्त पिता के प्रयत्न से वह रघु दिन-दिन शरीर के शुभ अवयवों से बढ़ने लगे; जैसे—(बालचन्द्रमाः) छोटा चन्द्रमा (हरिदश्वदीधितेः) सूर्य के (अनुप्रवेशात्) अनुप्रवेश से शुक्ल पक्ष में दिन-दिन बढ़ता जाता है।

चन्द्र में कलङ्क

अब इस बात को अच्छी प्रकार से समझ सकते हैं कि लोक चन्द्रमा में कलङ्क क्यों मानते हैं। कारण इसका यह है कि जिस प्रकाशमय रूप को चन्द्रमा जगत में दिखला रहा है वह उसका अपना रूप नहीं है। जैसे कोई महादरिद्र धूर्त नर दूसरे के कपड़े माँग कर और उन्हें पहन लोक में अपने को धनिक कहे तो उसको सब कोई कलङ्क ही देगा और उसको धूर्त ही कहेगा, इसी प्रकार ज्योतिरहित चन्द्रमा में दूसरे की ज्योति देख लोग कहने लग गये कि चन्द्र में कलङ्क है। धीरे-धीरे जब इस विज्ञान को लोग भूलते गये तब इसको अनेक प्रकार से कल्पना करने लगे। किन्होंने कहा कि इसमें मृग रहता है, इस हेतु कालिमा दीखता है। किन्होंने कहा कि यह समुद्र से उत्पन्न हुआ है और समुद्र में विष भी रहा करता था, अतः इन दोनों के संयोग होने में चन्द्रमा का बहुत सा हिस्सा कृष्ण (काला) प्रतीत होता है। कोई पौराणिक यह कहते हैं कि गुरु पत्नी तारा के साथ व्यभिचार करने से चन्द्र लाञ्छित माना गया है। इस तरह चन्द्र के सम्बन्ध में विविध कल्पनाएँ देश में प्रचलित हैं, वे सब ही मिथ्या हैं।

मृगाङ्क शशी—मृगाङ्क चन्द्र क्यों कहाता है? इसका भी यथार्थ कारण यह था कि मृग नाम भी सूर्य का है। वह सूर्य अपनी किरण द्वारा चन्द्र की गोद में रहता है, अतः चन्द्र के नाम मृगाङ्क और शशी आदि हुए हैं।

चन्द्र और २७ नक्षत्र

चन्द्रमा लौकिक भाषा में नक्षत्रेश, नक्षत्रस्वामी कहाता है। वे नक्षत्र २७ वा २८ माने गये हैं। असली बात यह थी कि पृथिवी की पूरी परिक्रमा चन्द्रमा करीब २८ दिन में समाप्त करता है। एक दिन में वह जितना चलता उतने मार्ग का नाम अश्विनी, द्वितीय दिन के मार्ग का नाम भरणी, इसी प्रकार २८ दिन के मार्ग के नाम २८ हैं। यहाँ विचारना चाहिए कि आकाश में तो अगणित नक्षत्र हैं, पुनः इन २८ नक्षत्रों की ही चर्चा अपने शास्त्र में इतनी क्यों है, इसका अवश्य कोई विशेष कारण होना चाहिए। वैदिक समय में विज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहती थी, इस हेतु पृथिवी, सूर्य और चन्द्र आदि की सब दशा से लोग परिचित थे। उस समय के विद्वानों ने स्थिर किया कि यह चन्द्रमा भी पृथिवी की परिक्रमा कर रहा है और वह करीब २८ दिन में पूर्ण होती है। गणित के लिए इन २८ दिनों के पृथक्-पृथक् नाम रखे गये। यह भी आपको मालूम हो कि अपने यहाँ चन्द्रमास का व्यवहार अधिक किया गया है। विविधयज्ञ चन्द्रमास के अनुसार ही किया करते थे। दर्शेष्टि और पूर्णमासेष्टि आत प्रसिद्ध है। प्रतिपद् द्वितीया आदि भी इसी के अनुसार है। चैत्र, बैशाख, ज्येष्ठ आदि मासों की गणना इसी के अधीन है। शतपथ ब्राह्मण में नक्षत्रानुसार यज्ञ करने की विधि विस्तार से वर्णित है। विज्ञान से सम्बन्ध रखने के कारण ये २८ नक्षत्र अधिक प्रसिद्ध हुए। लोगों को आश्चर्य मालूम होता था कि अहो ईश्वर की कैसी विभूतियाँ हैं कि यह विस्तीर्ण पृथिवी सूर्य की परिक्रमा कर रही है और उसकी भी परिक्रमा चन्द्र कर रहा है॥ पश्चात् जब भारतवासी इस वैदिक विज्ञान को भूल गये तो इन नक्षत्रों की बड़ी दुर्दशा हुई। नक्षत्रसूची ज्योतियों की तो इनसे पूरी कमाई होने लगी। पौराणिकों ने इन्हें चन्द्र की स्त्री मान ली, किन्हीं आचार्यों ने आकाशस्थ ताराओं को ही २८ नक्षत्र समझा। क्या यह आश्चर्य की बात है, क्या था और क्या हो गया। भारतवासियों! देखो! तुम्हारे पूर्वजों ने कितने परिश्रम से इन विज्ञानों का उपार्जन किया था, किन्तु तुम ऐसे कुपुत्र हुए कि इनको सर्वथा भ्रष्ट कर निश्चिन्त हो रहे हो।

२८ नक्षत्रों के नाम—अश्विनी, भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेशा, मघा, पूर्वाफल्गुनी, उत्तराफल्गुनी, हस्त,

चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा, रेवती। ये २७ नक्षत्र हैं, २८ वाँ अभिजित् भी माना जाता है।

वेद और नक्षत्र

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि। अष्टाविंशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्॥ १॥ सुहवं मे कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः समार्द्रा। पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे॥ २॥ पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वातिः सुखोमे अस्तु। राधो विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठासु नक्षत्रमरिष्टं मूलम्॥ ३॥ अन्नं पूर्वा रासन्ता मे अषाढ़ा ऊर्जं ये ह्युत्तर आ वहन्तु। अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठा कुर्वतां सुपुष्टिम्॥ ४॥ आ मे महच्छत-भिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म। आ रेवती चाश्वयुजौ भगंम आमेरयिं भरण्य आ वहन्तु॥ ५॥ —अथर्व०। १९। ७

यहाँ यह भी कहा गया है कि—

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तुमे।

—अथर्व० १९। ८। २

इन २८ नक्षत्रों के विशेषण में शग्मपद आया है। शग्मनाम कल्पित मार्ग का ही है। जिस मार्ग से चन्द्र परिक्रमा कर रहा है, उसी का नाम शग्म है। जो नक्षत्र केवल चन्द्रमार्ग सूचक थे, क्या आश्चर्य है आज अज्ञानियों के शुभाशुभ फलप्रद और धूर्तों के कमाखाने के साधन बन गये।

ग्रहण

सिद्धान्तशिरोमणि आदि ग्रन्थों में ग्रहण का विषय विस्तार से वर्णित है। पृथिवी की छाया से चन्द्र ग्रहण और चन्द्र की छाया से सूर्य ग्रहण होता है, यह बात आजकल स्कूलों का एक छोटा बच्चा भी जानता है। इनके लक्ष्य में कालिदास ने एक अच्छी उपमा दी है। वह यह है—

अवैमि चैनामनघेति किन्तु लोकापवादो बलवान् मतोमे।
छाया हि भूमेः शशिनो सलत्वेनारोपिता शुद्धिमतः प्रजाभिः॥

—रघुवंश। १४। ४०

रामचन्द्र कहते हैं कि यद्यपि मैं जानता हूँ कि यह सीता निष्पापा है तथापि लोकापवाद बलवान् है, यह मुझे भी मानना चाहिए। यद्यपि यह चन्द्रमा शुद्ध है, इसके ऊपर केवल पृथिवी की छाया पड़ती है। किन्तु प्रजा इसी छाया को चन्द्र कलंक मानती है। वह चन्द्र का कलंक अब नहीं मिटता, इससे भी यही सिद्ध है कि पृथिवी की छाया से ग्रहण लगता है।

चन्द्रमा का घटना-बढ़ना

सूर्य की किरण चन्द्रमा पर सर्वदा पड़ती रहती है। पृथिवी घूमती है अतः पृथिवीस्थ पुरुष चन्द्रमा को सदा प्रकाशित नहीं देखता, क्योंकि पृथिवी की छाया चन्द्र में पड़ जाने से हम लोगों को प्रकाश प्रतीत नहीं होता।

वेद और ग्रहण

वेदों में कुछ संदिग्ध सा वर्णन आया है जिससे राहु-केतु की कथा चली है और इसको न समझ कर राहुकृत ग्रहण लोग मानने लगे, मैं उन मन्त्रों को यहाँ उद्धृत करता हूँ।

यत्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः।
अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥

—ऋ० ५।४०।५

(सूर्य) हे सूर्य! (यद्)जब (त्वा) तुमको (आसुरः) असुरपुत्र (स्वर्भानुः) स्वर्भानु (तमसा) अन्धकार से (अविध्यत्) विद्ध अर्थात् आच्छादित कर लेता है तो उस समय (भुवनानि) सम्पूर्ण भुवन पागल से (अदीधयुः) दीख पड़ने लगते (यथा) जैसे (अक्षेत्रवित्) मार्ग को न जानने हारा पथिक (मुग्धः) मुग्ध अर्थात् घबरा जाता है तद्वत् सम्पूर्ण जगत घबरा जाता है।

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः।
अत्रय स्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन्॥ —ऋ० ५।४०।९

(आसुरः+स्वर्भानुः) आसुर स्वर्भानु (यम्+वै+सूर्यम्) जिस सूर्य को (तमसा+अविध्यत्) अन्धकार से घेर लेता है (अत्रयः) अत्रिगण (तम्+अनु+अविन्दन्) उसको पालते हैं। तम को नष्ट कर अत्रि सूर्य की रक्षा कर प्राप्त करते हैं यहाँ अन्यान्य ऋचाओं में भी इस प्रकार का

वर्णन आया है, ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसकी बहुधा चर्चा आती है। केवल एक उदाहरण शतपथ ब्राह्मण से देकर इसका तात्पर्य लिखूँगा—

स्वर्भानुर्ह वा आसुरः सूर्यं तमसा विव्याध स तमसा विद्धो न व्यरोचत तस्य सोमारुद्रावेवैतत्तमोऽपाहतां स एषोऽपहतपाप्मा तपति॥ —शत० ५।१।२।१।

तात्पर्य—असुर शब्द

ऋग्वेद में असुर शब्द दुष्ट अर्थ में बहुत ही विरल प्रयुक्त हुआ है। सूर्य, मेघ, वायु, वीर, परमात्मा आदि अनेक अर्थों में यह असुर शब्द विद्यमान है।

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यरव्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः।
क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मि रस्याततान॥

—ऋ० १।३५।७

यहाँ पर सूर्य के विशेषण में असुर शब्द आया है। जिस कारण सूर्य के प्रकाश से चन्द्र प्रकाशित होता रहता है, अतः (असुरस्य सूर्यस्य अयमासुरः) असुर जो सूर्य उसका सम्बन्धी होने से चन्द्र आसुर कहाता है।

स्वर्भानु—स्व=स्वर्ग आकाश, अन्तरिक्ष। भानु=प्रकाश। स्वर्ग का प्रकाश करने हारा चन्द्र है, अतः इसको स्वर्भानु कहते हैं।

अत्रि—सूर्य किरणों का नाम अत्रि है। "अदन्ति जलानि ये तेऽत्रयः किरणाः"

अब वैदिकार्थ पर ध्यान दीजिए। वेद में कहा गया है कि "आसुर स्वर्भानु सूर्य को अन्धकार से ढाँक लेता है।" ठीक है। आसुर स्वर्भानु जो चन्द्र वह अपनी छायारूप अन्धकार से सूर्य को ढाँक लेता है तब पुनः अत्रि अर्थात् सूर्य किरण ही इसको हटाकर सूर्य की, मानो, रक्षा करता है। शतपथ ब्राह्मण कहता है कि सोम और रुद्र इस तम को विनष्ट करता है। यह भी ठीक है, क्योंकि चन्द्र ही अपनी छाया सूर्य पर डालता है और कुछ देर के पश्चात् वहाँ से दूर हट जाता है। रुद्रनाम विद्युत् का है अर्थात् प्रकाश पुनः आ जाता है। यही, मानो, सूर्य का तम से छूटना है, वेद की यह एक बहुत साधारण बात थी। इसे न समझ कैसी-कैसी कल्पनानाएँ होती गईं।

आधुनिक संस्कृत में "तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः" अमर। स्वर्भानु राहु को कहते हैं कि असुर एक भिन्न जाति मानी जाती है, अतः इस प्रकार का महाभ्रम उत्पन्न हुआ है। मैं बारम्बार कह चुका हूँ कि वेदों की एक छोटी सी बात लेकर बड़ी-बड़ी गाथाएँ बनाते गये। इसलिए उचित है कि लोग वेदों को पढ़ें-पढ़ावें अन्यथा वे कुसंस्कारों से कदापि न छूट सकेंगे।

ग्रहण क्या है ?

चन्द्र ग्रहण में सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल दीख पड़ता है किन्तु मण्डल के ऊपर काली और लाल छाया रहती है। कभी सम्पूर्ण मण्डल के ऊपर और कभी उसके कुछ भाग के ऊपर वह छाया रहती है। सूर्यग्रहण इससे विलक्षण होता है। सूर्यमण्डल अधिक वा स्वल्प भाग उस समय छिपा हुआ रहता है।

ग्रहण दो प्रकार के होते हैं। १—जिनमें सूर्य और चन्द्र के मण्डल का कुछ भाग ही छाया आच्छादित होता है, वह भाग **ग्रास** वा **असम्पूर्ण ग्रास** कहाता है। लोग उसको उतना ही अनुभव करते हैं। जितना मेघ से वे दोनों सूर्य और चन्द्र छिप जाएँ। २—**सम्पूर्ण ग्रास** में सम्पूर्ण सूर्य और आच्छादित हो जाता है। सूर्य के सम्पूर्ण ग्रास के समय पृथिवी के ऊपर आश्चर्यजनक लीला होती है। पृथिवी के ऊपर उस समय एक विचित्र अन्धकार हो जाता है। न तो रात्रि के समान ही वह अन्धकार है और न ऊषाकाल के समान प्रकाश एवं अन्धकार युक्त ही है। आकाश में ताराएँ दीख पड़ने लगती हैं। पक्षिगण अपने घोसले की ओर दौड़ते हैं। रात्रिञ्चर पशु-पक्षी रात्रि समझ कर बाहर निकलने लगते हैं। अज्ञानी जन डर जाते हैं। बहुत दिनों की बात है कि दो देशों के मध्य घोर संग्राम हो रहा था, उसी समय सूर्यग्रहण लगा। दोनों दलों के सिपाही इतने डर गये कि युद्ध बन्द कर दिया गया और दोनों दलों में सन्धि हो गई। सूर्य के समग्र ग्रास से आजकल भी अज्ञानी जनों में अधिक भय उत्पन्न होता है। वे समझते हैं कि इससे किसी महान् राजा की मृत्यु होगी। महा दुर्भिक्ष, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, महामारी, भयंकर युद्ध, भूकम्प आदि उपद्रव इस वर्ष होंगे, किन्तु ये सब मिथ्या बातें हैं। ग्रहण से मृत्यु और दुर्भिक्षादि का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

❑❑

नाना कल्पनाएँ

जिन देशों में ग्रहण के तत्व नहीं जानते थे वहाँ इसके सम्बन्ध में विविध कल्पनाएँ लोग किया करते थे १—प्राचीन काल के रोम निवासी चन्द्रमा को एक देवी समझते थे। जब चन्द्र ग्रहण होता था तब वे मानते थे कि इस समय चन्द्र देवी अपने बच्चे के साथ परिश्रम कर रही है। इसकी सहायता के लिए वे चन्द्र देवी के नाम पर बलि दिया करते थे, उनमें से कोई मानते थे कि कोई जादूगर चन्द्र देवी को क्लेश पहुँचा रहा है। इस हेतु यह काली हो गई है इत्यादि।

२—अमेरिका के कुछ मनुष्य मानते थे कि जब-जब चन्द्रमा बीमार हो जाता है तब-तब ग्रहण लगता है। उनको इससे अधिक भय होता था कि ऐसा न हो कि वह हम लोगों के ऊपर गिर कर नष्ट कर दे। इस आपत्ति से बचने के लिए और चन्द्रमा को जगाने के लिए बड़े-बड़े ढोल पीटा करते थे। कुत्तों को मार-मार कर भौंकाते थे, स्वयं अपने बड़े जोर से चिल्लाया करते थे। उसके नैरोग्य के लिए देवताओं से प्रार्थनाएँ करते थे।

३—अमेरिका के मैक्सिको देश निवासी समझते थे कि चन्द्रमा और सूर्य में कभी-कभी तुमुल संग्राम हो जाता है। चन्द्रमा हार जाता है उसको बड़ी चोट लग जाती है, इसीलिये इसकी ऐसी दशा होती है। वहाँ के लोग ग्रहण के समय उपवास किया करते थे। स्त्रियाँ डर कर अपनी देह को ही पीटने लगती थीं। कुमारिकाएँ अपनी बाहु में से रक्त निकालने लगती थीं। छोटे-छोटे बच्चे रोने लगते थे।

४—अफ्रीका देश अभी तक महान्धकार में है। यहाँ के लोग निग्रो (हबसी) कहलाते हैं। वे जंगली अतिमूर्ख पशुवत् हैं। बहुत सी जातियाँ अभी तक कपड़ा पहनना भी नहीं जानती हैं। वहाँ कोई एक यांत्रिक चन्द्र ग्रहण के समय उपस्थित था, वह इसका प्रभाव इस प्रकार वर्णन करता है। एक दिन सन्ध्या समय शीतल वायु चल रही थी। लोग बड़े आनन्द से इधर-उधर मैदान में हवा खा रहे थे। चन्द्रमा के पूर्ण एवं स्वच्छ प्रकाश से और भी लोग बहुत प्रमुदित हो रहे थे।

इतने में ही चन्द्र कुछ–कुछ काला होना शुरू हुआ। धीरे–धीरे सर्वग्रास हो गया। ज्यों–ज्यों चन्द्र काला पड़ता जाता था त्यों–त्यों आनन्द घटता जाता था, भय और घबराहट बढ़ती जाती थी। सर्वग्रास के समय लोग बहुत घबरा कर इतस्ततः दौड़ने लगे। सैकड़ों पुरुष वहाँ के राजा के निकट दौड़ गये और कहने लगे कि यह आकाश में क्या हो रहा है। इस समय मेघ भी नहीं जिससे चन्द्रमा छिप जाए। वे एक–दूसरे के मुख अचम्भा से देखने लगे कि इस समय क्या आफत हम लोगों के ऊपर आवेंगी। वे ग्रहण के तत्त्व नहीं जानते थे, इसलिये इस प्रकार आकुल–व्याकुल हो रहे थे। बहुत आदमी बहुत जोर से चिल्लाने लगे। कोई डंकाओं को पीटने लगे, कोई तुरही फूंकने लगे। वे मानते थे कि कोई महान् साँप आ के चन्द्रमा को पकड़ लेता है, इसलिये यहाँ से इस असुर को डरा देना चाहिए ताकि वह चन्द्र को छोड़ कर भाग जाए। इसी अभिप्राय से वे डंका बजाना, सब कोई मिलकर हल्ला मचाना, तुरही फूंकना आदि काम जरूरी समझते थे। जब धीरे–धीरे पुनः चन्द्रमा स्वच्छ होने लगा तब वे निग्रो (हबसी) बड़ी खुशी मना–मना कर अपने पुरुषार्थ की प्रशंसा करने लगे।

५—शोक की बात है कि जिनके पूर्वज अच्छी प्रकार ग्रहण तत्त्व जानते थे वे भी भारतवासी इन्हीं जंगलियों के समान ग्रहण मानने लगे। आश्चर्य यह है कि यहाँ एक ओर ज्योतिषशास्त्र चिल्ला–चिल्ला कर कह रहा है कि पृथिवी की छाया से चन्द्र ग्रहण और चन्द्र की छाया से सूर्य ग्रहण होता है। न कोई असुर, न कोई साँप और न कोई अन्य पदार्थ ही चन्द्र–सूर्य को क्लेश पहुँचा सकता है। चन्द्र–सूर्य एक जड़ पदार्थ है। प्रतिदिन छायाकृत ग्रहण रहता ही है इसी कारण चन्द्रमा बढ़ता और घटता है। मेघ के आने से जैसे चन्द्रमा और सूर्य छिपा सा प्रतीत होता है। वैसा ही ग्रहण भी समझो। ग्रहण के कारण कदापि भी महामारी आदि उपद्रव नहीं होते इत्यादि विस्पष्ट और सत्य बात ज्योतिष शास्त्र बतला रहा है। वह शास्त्र पढ़ाया भी जा रहा हैं किन्तु दूसरी ओर मूर्खता की ऐसी धारा चल रही है कि जिसका वर्णन महाकवि भी नहीं कर सकते। ग्रहंण के समय हजारों–लाखों आदमी काशी, प्रयाग और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों की ओर दौड़ते हैं। राहु नाम के असुर से चन्द्र सूर्य को बचाने हेतु कोई जप, कोई दान, कोई पूजा करता। इस समय

को अशुभ समझ कोई स्नान करता, कोई समझता है कि यदि ग्रहण के समय काशी, गंगा वा कुरुक्षेत्र में स्नान हो गया तो मुक्ति साक्षात् हाथ में ही रखी हुई है। डोम और भंगी जोर-जोर से चिल्ला-चिल्ला कर कहते हैं कि ग्रहण लग गया, दान पुण्य करो इत्यादि विचित्र लीला आज भी भारत में देखते हैं। पुराणों ने यहाँ की सारी विद्याएँ नष्ट-भ्रष्ट कर दीं। वे कैसी मूर्खता की कथा गढ़ते हैं—एक समय देव और असुर मिल के समुद्र मथन कर अमृत ले आए। असुरगण अमृत को ले भागने लगे। देवगण वहाँ ही मुँह देखते रह गये। तब विष्णु भगवान् मोहिनी स्त्री रूप धर असुरों के निकट जा उन्हें मोहित कर उनसे अमृत के घड़े को अपने हाथ में लेके दोनों दलों को बराबर बाँट देने की सन्धि कर उन्हें बिठला मन में छल रख अमृत बाँटने लगे। प्रथम देव लोगों को अमृत देना आरम्भ किया। असुरों में एक राहु विष्णु के कपट-व्यवहार से परिचित था, अतः वह सूर्य और चन्द्र के बीच में आके बैठ गया था। ज्योंही विष्णु उस राहु को अमृत देने लगे त्योंही सूर्य और चन्द्र ने इशारा किया किन्तु कुछ अमृत इसके हाथ पर गिर चुका था और उसको उसने पी भी लिया। विष्णु ने उसे असुर जान चक्र से इसका शिर काट लिया। वह राहु और केतु दो हो गया। तब से ही वे दोनों अपने बैरी सूर्य-चन्द्र को समय-समय पर पीड़ा दिया करते हैं, इसीलिये ग्रहण होता है। यह पौराणिक गप्प है।

६—बौद्ध सम्प्रदायी भी पौराणिक ही एक प्रकार से हैं, अतः वे भी राहुकृत ही ग्रहण मानते हैं। इनमें चन्द्रप्रीति और सूर्यप्रीति नाम के दो स्तोत्र ग्रहण के समय में पड़ते हैं। चन्द्रप्रीति में इस प्रकार वर्णन आता है कि एक समय किसी एक स्थान में बुद्धदेव जी समाधिस्थ थे। उसी समय राहु नाम का असुर चन्द्रमा को अपने पेट में निगलने लगा। चन्द्र बहुत ही दुःखित हुए। बुद्ध को समाधि में देख जोर से पुकार चन्द्र भगवान् कहने लगे कि मैं आपकी शरण में हूँ। आप सबकी रक्षा करते हैं मेरी भी आप रक्षा कीजिए। इस कातर शब्द को सुन दयालु बुद्ध जी ने राहु से कहा कि तू यहाँ से चन्द्र को छोड़ भाग जा, क्योंकि चन्द्र ने मेरी शरण ली है। बुद्ध की इतनी बातें सुन चन्द्र को छोड़ डरता-काँपता साँस लेता हुआ वह राहु असुराधिपति विप्रचिति के निकट भाग कर जा पहुँचा और कहने लगा कि यदि मैं चन्द्रमा को

न छोड़ता तो न जाने मेरी क्या दशा होती। बुद्ध ने मेरा अत्याचार देख लिया। सूर्यप्रीति में भी इसी प्रकार की गप्प है।

७—चीन देश निवासी भी निग्रो (हबसी) हिन्दू और बौद्ध के समान ही समझते थे कि कोई लाल और कृष्ण साँप ही चन्द्र एवं सूर्य को तंग किया करता है। वे हिन्दू के समान न तो स्नान करते और न बौद्ध के समान चन्द्रप्रीति आदि स्तोत्र ही पढ़ते, किन्तु अफ्रीका के हबसी के समान सब कोई मिलकर बड़े जोर से चिल्लाने, ढोल बजाने, डंका पीटने लगते हैं ताकि इस शोर से डर कर वह सर्प भाग जाए। इत्यादि भिन्न देशवासी, अपनी-अपनी कल्पनाएँ किया करते हैं।

ये सर्व कल्पनाएँ मिथ्या हैं, क्योंकि यद्यपि चन्द्रमा और सूर्य यहाँ से देखने में अतिलघु प्रतीत होता है, किन्तु चन्द्रमा भी एक पृथिवी के समान ही लोक है वहाँ भी जीव निवास करते हैं। पृथिवी से थोड़ा ही छोटा चन्द्र है। सूर्य की कथा ही क्या। १३००००० तेरह लक्ष गुणा सूर्य पृथिवी से बड़ा है। वह अग्नि का महासमुद्र है। इस सूर्य के चारों तरफ लाख कोश में कोई शरीरधारी जीव इसकी ज्वाला से नहीं बच सकता है। यह सम्पूर्ण पृथिवी भी पर्वतसमुद्रादि सहित यदि सूर्यमंडल में डाल दी जाए तो एक क्षण में जलकर भाप हो जाए। जब ऐसी विस्तृत पृथिवी की वहाँ पर यह दशा हो तो आप विचार सकते हैं कि सर्प और असुर वहाँ कैसे पहुँच सकते। अतः राहु आदि की कथा सर्वथा मिथ्या है, पुनः जब राहुकृत ग्रहण होता तो नियमपूर्वक पूर्णिमा और अमावस्या तिथि को ही चन्द्र-सूर्य ग्रहण किस प्रकार होता। वह चेतन राहु स्वतन्त्र है जब चाहता तब ही सूर्य चन्द्र को धर पकड़ता किन्तु ऐसा नहीं होता, अतः यह कल्पना मिथ्या है। पुनः विद्वान् गण सैकड़ों वर्ष पहले ही ग्रहणों के मास, तिथि, पल, क्षण बतला सकते हैं। इतना ही नहीं, वे किस क्षण में ग्रहण और किस क्षण में मोक्ष होना आरम्भ होगा, यह भी कह सकते हैं। तब आप विचार करें कि यदि कोई सर्प वा राहु का यह कार्य होता तो गणित के द्वारा पण्डितगण इस विषय को कैसे कह सकते थे। इस हेतु उपयुक्त समस्त कल्पनाएँ मिथ्या होने से त्याज्य हैं।

पृथिवी की छाया चन्द्रमा के ऊपर पड़ती है, अतः चन्द्र ग्रहण होता है। इसी हेतु चन्द्र ग्रहण ईषद्रक्त सा प्रतीत होता है। चन्द्र की

छाया से सूर्य ग्रहण होता है। चन्द्रमा सर्वथा काला है। अतः सूर्य ग्रहण काला प्रतीत होता है। इसी कारण लाल और कृष्ण सर्प की भी कथा चल पड़ी है।

वर्ष में २ से कम और ७ से अधिक ग्रहण नहीं हो सकता। साधारणतया वर्ष में ४ चार ग्रहण होते हैं। इति।

वेद में विमान की चर्चा

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्। स विश्वाची रभि चष्टे घृताची रन्तरो पूर्वमपरंच केतुम्।

—यजु० १७।५९

(दिवः+मध्ये) आकाश के मध्य में (एषः+विमानः आस्ते) यह विमान के समान विद्यमान है। (रोदसी+अन्तरिक्षम्) द्युलोक, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष, मानो, तीनों लोकों में (आपप्रिवान्) अच्छी प्रकार परिपूर्ण होता है अर्थात् तीनों लोकों में इसकी अहत गति है। (विश्वाचीः) सम्पूर्ण विश्व में गमन करनेहारा (घृताचीः) घृतः=जल अर्थात् मेघ के ऊपर भी चलने हारा (सः) वह विमानाधिष्ठित पुरुष (पूर्वम्) इस लोक (अपरम्+च) उस परलोक (अन्तरा) इन दोनों के मध्य में विद्यमान (केतुम्) प्रकाश (अभिचष्टे) सब तरह से देखता है।

यहाँ मन्त्र में विमान शब्द विस्पष्ट रूप से प्रयुक्त हुआ है। इसकी गति का भी वर्णन है तथा इस पर चढ़ने हारे की दशा का भी निरूपण है, अतः प्रतीत होता है कि ऋषिगण अपने समय में विमान विद्या भी अच्छी प्रकार जानते थे। एक अति प्राचीन गाथा भी चली आती है कि प्रथम कुबेर का एक विमान था, रावण उसे ले आया था। रामचन्द्र विजय करके जब लङ्का से चले थे तब उसी विमान पर चढ़ कर लङ्का से अयोध्या आये थे।

सृष्टि-विज्ञान

आश्चर्य रूप से सृष्टि का वर्णन वेदों में उपलब्ध होता है। वेदों में कथा-कहानी नहीं है। अन्यान्य ग्रन्थों के समान वेद ऊटपटांग नहीं बकते। मन्त्रद्रष्टा ऋषि प्रथम इस अति गहन विषय में विविध प्रश्न करते हैं। वेदार्थ-जिज्ञासुओं को और वेदों के प्रेमियों को प्रथम वे प्रश्न जानने चाहिए जो अतिरोचक हैं और उनसे ऋषियों के आंतरिक भाव

का पूरा पता लगता। वे मन्त्र हम लोगों को महती जिज्ञासा की ओर ले जाते हैं, जिज्ञासा ही ने मनुष्य जाति को इस दशा तक पहुँचाया है, जिस देश में खोज नहीं वह मृत है। कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकता। मन्त्र द्वारा ऋषिगण क्या-क्या विलक्षण प्रश्न करते हैं। प्रथम उनको ध्यानपूर्वक विचारिये।

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत्। यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्म्मा विद्यामौर्णोत् महिना विश्वचक्षा॥

—ऋ० १०।८१।३

लोक में देखते हैं कि जब कोई कुम्भकार तन्तुवाय वा तक्षा घट, पट, पीढ़ी आदि बनाना चाहता है तब वह पहले सामग्री लेता है और कहीं एक स्थान में बैठ कर घड़ा आदि पात्र बनाता है। अब जैसे लोक में व्यवहार देखते हैं वैसे ही ईश्वर के भी होने चाहिए। अतः प्रथम विश्वकर्मा ऋषि प्रश्न करते हैं कि (स्वित्) वितर्क=मैं वितर्क करता हूँ कि (अधिष्ठानम्) अधिष्ठान अर्थात् बैठने का स्थान (किम्+आसीत्) उस परमात्मा का कौन सा था? (आरंभणम्+कतमत्) जिस सामग्री से जगत् बनाया है वह आरम्भ करने की सामग्री कौन सी थी? (स्वित्) पुनः मैं वितर्क करता हूँ (कथा+आसीत्) बनाने की क्रिया कैसी थी (यतः) जिस काल में (विश्वचक्षाः) सर्वद्रष्टा (विश्वकर्मा) सर्वकर्त्ता परमात्मा (भूमिम्+जनयन्) भूमि को (द्याम्) और द्युलोक को उत्पन्न करता हुआ (महिना) अपने महत्व से (वि+और्णोत्) सम्पूर्ण जगत को आच्छादित करता है। उस समय इसके समीप कौन सी सामग्री और अधिष्ठान था? यह एक प्रश्न है। विश्वचक्षाः=विश्व= सब, चक्षा= देखनेहारा। विश्वकर्मा= सर्वकर्ता। पुनः वही ऋषि प्रश्न करते हैं—

किं स्विद् वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्य दध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥

—ऋ० १०।८१।४

लोक में देखते हैं कि वन में से वृक्ष काट अनेक प्रकार के भवन बना लेते हैं। ईश्वर के निकट कौन सा वन है? (स्वित्) मैं वितर्क करता हूँ, (किम्+वनम्) कौन सा वन था? (कः+उ+सः+वृक्ष+आस) कौन सा वह वृक्ष था? (यतः) जिस वन और वृक्ष से (द्यावापृथिवी)

द्युलोक और पृथिवी को (निष्टतक्षुः) काटकर बहुत शोभित बनाता है। (मनीषिणः) हे मनीषी कविगण! (मनसा) मन से अच्छी प्रकार विचार (तत्+इत्+उ) उसको भी आप सब पूछें कि (भुवनानि+धारयन्) सम्पूर्ण जगत को पकड़े हुए वह (यद्+अधि+अतिष्ठत्) जिसके ऊपर स्थित है। इस ऋचा के द्वारा ऋषि दो प्रश्न करते हैं, एक जगत् बनाने की सामग्री कौन सी है और दूसरा सबको बनाकर एवं पकड़े हुए वह कैसे खड़ा है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वत-स्पात्। सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवएकः॥

—ऋ० १०।८१।३

अब स्वयं वेद भगवान् उत्तर देते हैं कि वह परमात्मा (विश्व-तश्चक्षुः) सर्वत्र जिसका नेत्र है जो सब देख रहा है, (विश्वतोबाहुः) सर्वत्र जिसका बाहु है (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र जिसका पैर है जो (एकः+देवः) एक महान् देव है, वह प्रथम (बाहुभ्याम्) बाहु से (संधमति) सब पदार्थ में गति देता है। तब (पतत्रैः) पतनशील व्यापक परमाणुओं से (द्यावाभूमि) द्युलोक और भूमि को (संजनयन्) उत्पन्न करता हुआ।

एक देव निराधार विद्यमान है। द्वितीय प्रश्न का उत्तर तो यह है कि जब परमात्मा सर्वव्यापक है तब इसके आधार का विचार ही क्या हो सकता है जो एक देशीय होता है वह आधार की अपेक्षा करता है। इस दृश्यमान संसार में वह ऊपर, नीचे, चारों तरफ और अभ्यंतर जब पूर्ण है। तब यह प्रश्न कैसा? अब प्रथम प्रश्न का उत्तर यह दिया जाता है कि पतत्र=अर्थात् पतनशील=अतिचंचल गतिमान पदार्थ सदा रहता ही है, न वह कभी उत्पन्न हुआ, न होता, न होगा, वह शाश्वत पदार्थ है। उन्हीं पतत्र में गति देकर अपनी निरीक्षण यह सारी सृष्टि रचा करता है। इस मन्त्र से सिद्ध है कि परमात्मा इस जगत् का निमित्त कारण है। जीवात्मा और प्रकृति भी नित्य अज वस्तु है। इन्हीं दोनों की सहायता से वह ब्रह्म सृष्टि रचा करता है।

ईश्वर का अस्तित्व

प्रथम यहाँ शंका हो सकती है कि ईश्वर ही कोई वस्तु सिद्ध नहीं

होता। इसके उत्तर में बड़े-बड़े शास्त्र हैं, यहाँ केवल दो-एक बात पर ध्यान दीजिये। भाव से भाव होता है अर्थात् प्रथम किसी पदार्थ का होना आवश्यक है। उस पदार्थ से अन्य पदार्थ होगा। वह पदार्थ चेतन परम ज्ञानी परमविवेकी होवे, क्योंकि परम ज्ञानी ही इस ज्ञानमय जगत् को बना सकता है। अतः कोई परम ज्ञानी पुरुष सदा से विद्यमान है, वही परमात्मा ब्रह्म आदि नाम से पुकारा जाता है। ईश्वर के अस्तित्व में दूसरा प्रमाण रचना है। अपने शास्त्र में "**जन्माद्यस्य यतः**" जिससे इस जगत् का जन्म-पालन और विनाश हो, उसे ईश्वर कहा है। इसकी रचना देखकर प्रतीत होता है कि कोई ज्ञानी रचयिता है। किसी वन में सुन्दर भवन, उसके चारों तरफ पुष्पवाटिका, कूप, तड़ाग और उसमें भोजन के अनेक पदार्थ इत्यादि मनुष्य योग्य वस्तु देखी जाएँ किन्तु किसी कारणवश कोई अन्य पुरुष वहाँ न दीख पड़े तो भी द्रष्टा पुरुष यही अनुमान करेगा कि इस भवन का रचयिता कोई ज्ञानी पुरुष है। ऐसा नहीं हो सकता कि स्वयं ये अज्ञानी प्रस्तर, मिट्टी और पानी इकट्ठे हो ऐसा सुन्दर मकान बन गये हों। यदि ऐसा हो तो प्रतिदिन लाखों भवन बन जाने चाहिए और वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत के जितने अक्षर हैं उतने अक्षर काटकर किसी बड़े बर्तन में रख दिए जाएँ। यदि वे अक्षर मिलकर श्लोकों के रूप में बन जाएँ तो कहा जा सकता है कि ये विद्यमान परमाणु स्वयं जगत् के रूप में बन गये किन्तु ऐसा हो नहीं सकता। अतः सिद्ध है कि कोई रचयिता चेतन है, वही ईश्वर है। वह ईश्वर स्वयं अपने शरीर से इस जगत् को नहीं बनाता। यदि ऐसा करे तो वह भिखारी समझा जाए और तब ईश्वर के शरीर के समान यह जगत् भी पवित्र होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि ईश्वर का कोई शरीर नहीं, वह अशरीर है। जो शरीरधारी हो, वह सर्वव्यापक नहीं हो सकता, लेकिन ईश्वर सर्वव्यापक है। अतः सिद्ध है कि कोई अचेतन जड़ पदार्थ भी सदा से चला आता है, इसी को प्रकृति कहते हैं। वेदों में इसका नाम अदिति है। अब वह जगत् जड़ चेतन मिश्रित है, अतः जड़ भिन्न कोई चेतन भी सदा से विद्यमान था, ऐसा अनुमान होता है। उसी का नाम जीव है। इसी प्रकृति और जीव की सहायता से परमात्मा सृष्टि रचा करता है। सृष्टि विज्ञान पर आगे लेख रहेगा। यहाँ इतना और भी जानना चाहिए कि परमात्मा सदा एक

स्वरूप रहते हैं, इनमें किसी प्रकार का परिणाम नहीं। जैसे दूध से दही बनता है, जल से भाप-बर्फ और वर्षा से बनौरे बनते हैं, इसी का नाम परिणाम है। जीव भी निज स्वरूप से अपरिणामी है केवल प्रकृति ही परिणामिनी है। कैसे आश्चर्य प्रकृति का परिणाम है। वही कहीं सूर्यरूप महाग्नि का समुद्र बनी हुई है। कहीं जलमय हो रही है। कहीं सुन्दर मानव शरीर की छवि दिखा रही है। कहीं कुसुमरूप में परिणत हो कैसे अपूर्व सुरभि फैला रही है। कहीं मृग शरीर बन के दौड़ रही है और कहीं सिंह शरीर से मृग को खा रही है। अहा!! कैसी अद्‌भुत लीला उस प्रकृति द्वारा ईश्वर दिखा रहा है। आप विचार तो करें यदि कोई महान् चेतन प्रबन्धकर्त्ता न होता तो जड़ अज्ञानिनी अमन्त्री प्रकृति ऐसी नियम बद्ध लीला कैसे दिखला सकती। वह जड़ प्रकृति कैसे विचारती कि कुछ परमाणु मिल के सुगन्धि बने। कुछ पत्ते, कुछ डाल, कुछ बीज बने। यह विचार परमाणु पुंजों में कैसे उत्पन्न हो सकता है। अतः सिद्ध है कि प्रबन्धकर्त्ता कोई महान् चेतन है। यह तो आप देखें कूष्माण्ड (पेठा) का एक बीज किसी अच्छे खेत में लगा देवें। इस एक बीज से अच्छे खेत में अच्छे प्रबन्ध के द्वारा कम से कम सहस्त्र कूष्माण्ड (पेठे) उत्पन्न होंगे। यदि प्रत्येक पेठे में एक-एक सौ ही बीज हों तो भी १०००×१००=१००००० बीज होंगे। अब इतने बीजों को पुनः अच्छे खेतों में लगावें। इसी प्रकार लगातार दश वर्ष तक बीज लगाते जावें। आप अनुमान करें वे बीज लता रूप में आके कितनी जमीन घेर लेंगे।

यदि इसी प्रकार (१००) वर्ष तक बीज बोए जाएँ तो मैं कह सकता हूँ कि पृथिवी पर कहीं जगह नहीं रहेगी। कहिये कैसी अद्‌भुत लीला है। एक बीज में कितनी शक्ति भरी हुई है। बीज बहुत ही छोटा होता है इससे कितनी शाखा वाली लता बन जाती है। यदि वह लता तौली जाए तो कितने मन होंगे, यह वृद्धि कहाँ से आई-बीज से। जिस समय अंकुर होता है तो देखने से प्रतीत होता है कि उसका स्थूल भाग ज्यों का त्यों ही बना हुआ है। किसी अदृश्य शक्ति से अंकुर निकल आता है और धीरे-धीरे दो-तीन मास में ही एक महान् लताकुंज बन जाता है। पुनः इन्हीं पृथिवी, अप्, तेज, वायु की सहायता से पेठे का बीज, अपने समान ही परिणाम पैदा करता है और मिरची का बीज

अपने समान, अंगूर का बीज मधुरता, नीम का बीज तिक्तता, इत्यादि आश्चर्य परिणाम को ये सारे बीज दिखला रहे हैं। इन बीजों में ऐसा अद्भुत प्रबंध किसने कर रखा है, निश्चय वह महान् ईश्वर है। जो प्रकृति और जीव के द्वारा इस महान् प्रबंध को दिखला रहा है। संक्षेपतः यह जानें कि प्रकृति से ही पृथिवी, अप्, तेज और वायु बने हुए हैं। ये दृश्यमान सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ताराएँ और ये अनंत ब्रह्मांड प्रकृति के ही विकार हैं।

पृथिवी आदि की उत्पत्ति

वेदों में पृथिवी आदि की उत्पत्ति यथार्थ रूप से लिखी हुई है। धीरे-धीरे बहुत दिनों में यह पृथिवी इस रूप में आई है। यह प्रथम सूर्यवत् जल रही थी, अभी तक पृथिवी के भीतर अग्नि पाया जाता है। कई स्थानों में पृथिवी से अग्नि की ज्वाला निरंतर निकल रही है। इसी को ज्वालामुखी पर्वत कहते हैं। कहीं-कहीं गरम पानी निकलता है। इसका भी यही कारण है कि वहाँ पर अग्नि है। धीर-धीरे ऊपर से पृथिवी शीतल होती गई। तब जीव-जन्तु उत्पन्न हुए। लाखों वर्षों में, वह अग्नि की दशा से इस दशा में आई है। वेद विस्पष्ट रूप से कहते हैं कि ''सूर्यचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवंच पृथिवीञ्चांत-रिक्षमथो स्वः।'' परमात्मा पूर्ववत् ही सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और सब प्रकार सुखमय पदार्थ बनाया करता है।

पुराण और पृथिवी की उत्पत्ति

परंतु शोक की बात है कि पुराण इस विज्ञान को भी नहीं मानते और एक असंभव गाथा बनाकर लोगों को महाभ्रम एवं अज्ञानरूप महासमुद्र में डुबो देते हैं। देवी भागवत् पद्म पुराण आदि अनेक पुराणों में यह कथा आती है कि—प्रथम विष्णु ने जल उत्पन्न किया और उसी में घर बना कर सो गये। इनके नाभि कमल से जल के ऊपर एक ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। वह कमल पर बैठकर सोच ही रहा था कि मैं कहाँ से आया, मेरा क्या कार्य है इत्यादि। उतने में ही दो दैत्य मधु एवं कैटभ विष्णु के कर्णमल से उत्पन्न हो (विष्णुकर्णमलोद्भूतौ) जल के ऊपर आ के ब्रह्मा को कमल के ऊपर बैठा देख बोले कि अरे तू! इस पर से उतर जा, हम दोनों बैठेंगे। इस प्रकार तीनों लड़ने लगे।

पश्चात् ब्रह्मा की पुकार से साक्षात् विष्णु जी आये और इन दोनों असुरों को छल से मारा। तब से ही विष्णु जी मधुसूदन कहलाने लगे। इन दोनों के शरीर से जो रक्त, मज्जा, मांस निकला वही जल के ऊपर जमकर पृथिवी बन गई। इसी कारण इसका नाम मेदिनी पड़ा है, क्योंकि इन मधुकैटभों के मेद अर्थात् मज्जा से बनी हुई है।

प्रमाण—"मधुकैटभयोरासीन्मेदसैव परिप्लुता। तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः॥" इत्यादि प्रमाण देवी भागवत आदि में देखिये। अथवा शब्दकल्पद्रुम आदि कोशों में मेदिनी शब्द के ऊपर इन्हीं प्रमाणों को देखिये। जल की ही प्रथम सृष्टि हुई, यह पुराणों का कथन बहुत ही मिथ्या है। जब जलराशि समुद्र बन गया, जिसमें विष्णु भगवान् सोए हुए थे तो समुद्र किस आधार पर था। अज्ञानी पुरुष समझते हैं कि नौका के समान यह पृथिवी जल के ऊपर ठहरी हुई है वा शेषनाग के शिर पर कच्छप की पीठ पर यह स्थापित है। यदि मधुकैटभ के रुधिर-मांस-मज्जा से यह पृथिवी बनी तो मधुकैटभ का शरीर कहाँ से और किस पदार्थ से बना हुआ था। विष्णु यदि शरीरधारी थे तो उनका शरीर किन धातुओं से बना हुआ था। पुनः कान के मैल कहाँ से आए। कमल कैसे और किन पदार्थों से बने इत्यादि बातों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि पुराणों के लेखक भ्रमयुक्त थे।

सूर्य-चन्द्र की उत्पत्ति

मैं अभी कह चुका हूँ कि परमात्मा ने ही इस सूर्य-चन्द्र को बनाया है। परंतु पुराण कुछ और ही कहते हैं। वे इस प्रकार वर्णन करते हैं कि कश्यप ऋषि की अदिति, दिति, दनु, कद्रू, बनिता आदि अनेक स्त्रियाँ थीं। इसी अदिति से आदित्य अर्थात् सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र आदि उत्पन्न हुए।

भागवतादि यह भी कहते हैं कि अत्रि ऋषि के नेत्र से चन्द्र उत्पन्न हुआ है; यथा—

अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्त्तयः॥
सहस्त्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात्।
जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः॥

तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः॥

कोई कहता है कि समुद्र से चन्द्र की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार मेघ कैसे बनता, वायु क्यों कभी तीक्ष्ण और कभी मन्द होती, पृथिवी से किस प्रकार गरम जल और अग्नि निकलता, ज्वालामुखी क्या वस्तु है, भूकम्प क्यों होता, विद्युत् क्या वस्तु है, मेघ में भयंकर गर्जना क्यों होती, इत्यादि विषय विज्ञान शास्त्र के द्वारा प्रत्येक पुरुष को जानने चाहिएँ "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।" मनुष्य की उत्पत्ति ही इसी कारण हुई है। जिज्ञासा करना मनुष्य का परम धर्म है। वेदों और शास्त्रों में इसकी बहुधा चर्चा आई है। हम अपने चारों तरफ सहस्रों पदार्थ देखते हैं। उनको विचार दृष्टि से अवश्य जानना चाहिए। आकाशस्थ ताराएँ कितनी बड़ी और कितनी छोटी हैं, वे पंक्तिबद्ध और बन के समान क्यों दीखतीं, पृथिवी से ये कितनी दूरी पर हैं! एवं नक्षत्रों की अपेक्षा चन्द्र क्यों बड़ा दीखता पुनः इसके इतने रूप कैसे बदलते! प्रायः सब ही ग्रह पूर्व से पश्चिम की ओर आते हुए क्यों दीख पड़ते। इसी प्रकार पृथिवी पर नाना घटनाएँ होती रहती हैं— कभी वर्षा ऋतु में मेघ भयङ्कर रूप से गर्जता, बिजली लगकर कभी-कभी मकान और बड़े-बड़े ऊँचे वृक्ष जल जाते, मनुष्य मर जाते, वह बिजली कहाँ से और कैसे उत्पन्न होती, मेघ किस प्रकार बनता, इतने जल आकाश में कहाँ से इकट्ठे हो जाते, पुनः मेघ आकाश में किस आधार पर बड़े वेग से दौड़ते, वहाँ ओले कैसे बनते, फिर थोड़ी ही देर में मेघ का कहीं पता नहीं रहता, इत्यादि बातें अवश्य जाननी चाहिएँ।

ऐ मनुष्यो! ये ईश्वरीय विभूतियाँ हैं, इन्हें जो नहीं जानता वह कदापि ईश्वर को नहीं जान सकता। वह अज्ञानी पशु है। स्वयं वेद भगवान् मनुष्य जाति को जिज्ञासा की ओर ले जाते हैं, आगे इसी विषय को देखिये। अतः जिज्ञासा करना मनुष्य का परम धर्म है।

ऐ मनुष्यो! इस जगत् में यद्यपि परमात्मा साक्षात् दृष्टिगोचर नहीं होता तथापि इसकी विभूतियाँ ही दीख पड़तीं और इन्हीं में वह छिपा हुआ है। अतएव बड़े-बड़े प्राचीन ऋषि कह गये हैं कि "आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन"। इस परमात्मा की वाटिका को ही सब

कोई देखते हैं और इसी के द्वारा उसको देखते हैं, साक्षात् उसको कोई नहीं देखता। अतः इस जगत् के वास्तविक तत्वों को जो सदा अध्ययन किया करता है वह, मानो, परम्परा से ईश्वर का ही चिन्तन कर रहा है। व्यास ऋषि इसी कारण ब्रह्म का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि "जन्माद्यस्य यतः" जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और संहार हुआ करता है, वही ब्रह्म है। इससे ब्रह्म और जगत् का सम्बन्ध बतलाया, अतः यदि जगत को जान लेवे तो, मानों, ईश्वर की रचना जान ली, यह कितनी बड़ी बात है। अतः जिज्ञासुओ! प्रथम ईश्वर की रचना की ओर ध्यान दो।

वसिष्ठ और अगस्त

देश में अनेक त्रुटियाँ हैं, गवेषणा नहीं कही जाती। शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा महाभारत, रामायण, पुराणों में बहुत सी ऐसी आख्यायिकाएँ उक्त हैं जिनसे बड़े-बड़े मानव हितकारी सिद्धांत निकलते हैं, क्योंकि वेदों से वे सब आए हुए हैं, किन्तु कथा के स्वरूप में वे वैदिक सिद्धान्त लिखे गये हैं, अतः उनका आशय आज सर्वथा अस्त-व्यस्त हो गया है। उदाहरण के लिये, मैं वेदों के सुप्रसिद्ध वसिष्ठ और अगस्त दो ऋषियों को प्रस्तुत करता हूँ। क्या यह सम्भव है कि दो पुरुषों के बीज मिलकर बालकों को उत्पन्न करें, वह भी साक्षात मातृगर्भ में नहीं किन्तु स्थल और घट में उत्पत्ति हो? उर्वशी के दर्शन मात्र से मित्र और वरुण दो देवों का चित्त चञ्चल हो जाए? उनसे तत्काल ही एक या दो सुभग बालक उत्पन्न हों और तत्काल ही देवगण उन्हें कमल के पत्रों पर बिठला उनकी स्तुति पूजा करें? उनमें से एक बालक सम्पूर्ण सूर्यवंशी राजाओं का पुरोहित बन सृष्टि की आदि से प्रलय तक अजर-अम्मर हो एक रूप में सदा स्थिर रहे? क्या यह सम्भव है कि वसिष्ठ की एक गौ जो चाहे सो करे? हजारों प्रकार की सेनाओं को वह स्वयं रच ले, पृथिवी के समस्त पदार्थ उसकी आज्ञा में हाथ जोड़कर खड़े रहें, इस शबला गौ के लिए वसिष्ठ और विश्वामित्र में तुमुल संग्राम हो? वसिष्ठ के शतपुत्रों को विश्वामित्र मरवा दे, इस शोक में वसिष्ठ सुमेरु पर्वत के सबसे ऊपर के शिखर पर से गिरें तो भी न मरें। अग्नि उन्हें न जलावे, समुद्र इनसे डर जाए। हाथ, पैर और सब अंगों को बाँध नदियों में डूबने को जाएँ, किन्तु

नदियाँ भाग जाएँ इनके बँधन को तोड़ डालें इत्यादि शतशः कथाएँ वशिष्ठ के विषय में जो कही जाती हैं उनका क्या आशय है ? क्या सचमुच ये वसिष्ठ और अगस्त्य दो महान् ऋषि वेश्या पुत्र हैं। उर्वशी कोई वेश्या है ? क्या मित्र और वरुण कोई ऐसे तुच्छ देव हैं, जो झट स्त्री पर मोहित हो जाते ? इत्यादि। क्या इनकी सत्यता के अन्वेषण के लिए कभी हम प्रयत्न करते हैं ? निःसन्देह यह अद्भुत कथा है। इससे अति गूढ़ बातें निकलती हैं। मित्र और वरुण के पुत्र वसिष्ठ एवं अगस्त्य की आख्यायिका से राज्य व्यवस्था सम्बन्धी एक परम उपयोगी वैदिक सिद्धान्त विनिःसृत होता है, अतः मैं इस भाग में इसको प्रथम दर्शा पश्चात् वसिष्ठ सम्बन्धी अन्यान्य कथाओं का आशय प्रकट करूँगा। इसको ध्यान से आप लोग पढ़ें।

इसके लिए प्रथम यह जानना आवश्यक है कि स्वतन्त्र और अज्ञानी राजा से देश की कितनी हानि हुई है और हो रही है। अतएव पृथिवी पर के सभ्य देशों में आजकल दो प्रकार के राज्य हैं। एक प्रजाधीन, दूसरा सभाधीन अर्थात् जिसमें राजा को सभा की आज्ञा का वशवर्ती होना पड़ता है। सर्व विद्वानों की प्रायः इसमें एक सम्मति है कि प्रजाधीन ही राज्य चाहिए और यही मनुष्यता है। ज्यों-ज्यों मनुष्यता की वृद्धि होगी त्यों-त्यों स्वयं राज्य व्यवस्था शिथिल होती जाएगी, क्योंकि प्रत्येक मानव निज कर्तव्य को अच्छी प्रकार निबाहेगा। इतिहास से विदित होता है कि जब-जब राजा उच्छृंखल हुआ है तब-तब महती आपत्ति प्रजाओं में आई हैं। अतः वेद में ऐसा वर्णन आता है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥

—यजु० २०। २५

ब्रह्म=ज्ञान, विज्ञान, परमज्ञानी जन, धर्मतत्वज्ञ, धर्माध्यक्ष पुरुषों की महती सभा इत्यादि। क्षत्र=बल, प्रजाशासक वर्ग, धार्मिक बली, प्रजा शासकों की महती सभा इत्यादि। प्रज्ञेषम्=प्रजानामि जानता हूँ। देव=प्रजावर्ग, शास्य प्रजाएँ। अग्नि=परमात्मा, ब्राह्मण, अग्नि होत्रादि कर्म यद्यपि वैदिक शब्द लोक में भी प्रयुक्त हुए हैं, परन्तु लोक में उन वैदिक शब्दों के अर्थ में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। वेदों के अर्थों के विचार से वे-वे अर्थ अच्छी प्रकार भासित होने लगते हैं। **अथ**

मन्त्रार्थ—(तम्+लोकम्+पुण्यम्+प्रज्ञेषम्) उस लोक को मैं पुण्य समझता हूँ। (यत्र+ब्रह्म+च+क्षत्रन्+च) जहाँ ज्ञान और बल अथवा ज्ञानी और बली अथवा धर्मव्यवस्थापक विद्वद्वर्ग और उस व्यवस्था के अनुसार शासन करने वाले राजगण (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार मिलकर परस्पर सत्कार करते हुए (सह+चरतः) साथ विचरण करते हैं, साथ ही सर्व व्यवहार करते हैं। (यत्र+देवाः) और जहाँ प्रजावर्ग (अग्निना+सह) ईश्वर, ज्ञानी और अग्निहोत्रादि शुभ कर्म के साथ विचरण करते हैं अर्थात् जहाँ सर्व प्रजाएँ आस्तिक हो शुभ कर्मों को यथा विधि करते हैं और ज्ञानियों के पक्ष में रहते हैं। वही देश–वही लोक पवित्र है। पुनः—

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।
मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यैते स्वाहा॥

—यजु० ३२।१६

यह भी एक प्रार्थना है। (इदम+च+क्षत्रम्+च) यह ज्ञानी और शासक वर्ग (उभे+मे+श्रियन्+अश्नुताम्) दोनों ही मिलकर मेरी सम्पत्ति को भोग में लावें। (मयि+देवाः+उत्तमाम्+श्रियम्+दधतु) मुझमें समस्त शुभाभिलाषी प्रजावर्ग उत्तम श्री सम्पत्ति स्थापित करे। (तस्यै+ते+स्वाहा) हे सम्पत्ति! तुम्हारे लिये मेरा सर्वस्व त्याग है। स्वाहा=स्व+आहा। स्व=धन। आहा=सब प्रकार से त्याग। अपने स्वत्त्व को सर्व प्रकार से त्याग करने का नाम स्वाहा है। उन पूर्वोक्त दो मन्त्रों में ही नहीं किन्तु यजुर्वेद के बहुत स्थलों में ब्रह्म और क्षत्र दोनों को मिलकर व्यवहार करने का वर्णन आता है। दो–चार उदाहरण ये हैं—

स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु। —यजु० १८।३८

वह ब्रह्म और क्षत्र हमको पाले। यही वाक्य इस अध्याय की ३९, ४०, ४१, ४२, ४३ वीं कण्डिकाओं में आया है॥

सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय। ७।२१॥

परमात्मा इस ब्रह्म और क्षत्र को पवित्र करता है॥

ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व। ३८।१४॥

हे भगवान! ब्रह्म और क्षत्र को उन्नत करो। पुनः प्रार्थना आती है, देवा ऋ० प्रजापति दे० भूरिगार्गी पंक्ति पंचम कि—

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा।

—यजु० १८।४४

(भुवनस्य+पते+प्रजापते) हे सम्पूर्ण-विश्वाधिपति प्रजापति परमात्मन्! (यस्य+ते उपरि+गृहाः) जिस आपके गृह ऊपर हैं। (यस्य+वा+इह) जिस आपके गृह इस लोक में हैं अर्थात् जो आप सर्वव्यापक हैं। (सः+नः+अस्मै+ब्रह्मणे+अस्मै+क्षत्राय) सो आप मेरे इस परम ज्ञानी वर्ग को और शासक वर्ग को (महि+शर्म+यच्छ) बहुत कल्याण देवें। (स्वाहा) हे परमात्मन्! आपके लिए मेरा सर्व त्याग है॥

अब अनेक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। वेदों को विचारिये मालूम होगा कि जब ज्ञान और बल दोनों मिलकर कार्य करते हैं तब ही परम कल्याण होता है। अतएव मनु जी बहुत जोर देकर कहते हैं कि—"दशावरा वा परिषद् यं धर्मं परिकल्पयेत्। त्र्यव्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत्"। न्यून से न्यून दश विद्वानों की अथवा बहुत न्यून हो तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे, उसका उल्लंघन कोई भी न करे॥

ब्रह्म क्षत्री ही मित्र और वरुण हैं

जिस ब्रह्म और क्षत्र का विवरण ऊपर दिखलाया है उनको ही वेदों में मित्र और वरुण कहते हैं। ब्रह्म मित्र है और क्षत्र वरुण है। इसमें यद्यपि अनेक प्रमाण मिलते हैं तथापि मैं केवल शतपथ का एक प्रबल प्रमाण यहाँ लिखता हूँ। यजुर्वेद ७।९ की व्याख्या करते हुए शतपथ कहता है—

क्रतुदक्षौ ह वा अस्य मित्रावरुणौ। एतन्न्वध्यात्मं स यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव ऋतुरथ यदस्मै तत्समृध्यते स दक्षो मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्षो ब्रह्मैव मित्रः क्षत्रं वरुणोभिगन्तैव ब्रह्म कर्त्ता क्षत्रियः॥ १॥ ते हैते अग्रे नानेवासतुः। ब्रह्म च क्षत्रं च। ततः शशाकैव ब्रह्म मित्र ऋते क्षत्राद्वरुणात्स्थातुम्॥ २॥ न क्षत्रं वरुणः। ऋते ब्रह्मणो मित्राद्यद्ध किं च वरुणः कर्म चक्रेऽप्रसूतं ब्रह्मणा मित्रेण न है वास्मै तत्समानृधे॥ ३॥ स क्षत्रं वरुणः। ब्रह्म मित्रमुपमन्त्रयां चक्र उपमा वर्तस्व सं सृजावहै पुरस्त्वा करवै त्वत्प्रसूतः कर्म करवा इति

तथेति तौ समसृजेतां तत एष मैत्रावरुणे ग्रहोऽभवत्॥ ४॥ सो एव पुरोधा। तस्मान्न ब्राह्मणः सर्वस्येव क्षत्रियस्य पुरोधां कामयते। सं ह्येतौ सृजेते सुकृतं च दुष्कृतं च नो एव क्षत्रियः सर्वमिव ब्राह्मणं पुरोदधीत सं ह्ये ल्वेतौ सृजेते सुकृतं च दुष्कृतं च स यत्ततो वरुणः कर्म चक्रे प्रसूतं ब्रह्मण मित्रेण सं है वास्मै तदानृधे॥ शतपथ। ४। १॥

क्रतु और दक्ष ही इसके मित्र और वरुण हैं। यह अध्यात्म विषय है। सो यह यजमान मन से जो यह कामना करता है कि यह मुझे हो और यह कर्म मैं करूँ, इसी का नाम क्रतु है और जो इस कर्म से उसको समृद्धि प्राप्त होती है, वही दक्ष है। मित्र ही क्रतु है और वरुण ही दक्ष है। ब्रह्म अर्थात् ज्ञानी न्यायी वर्ग ही मित्र है और क्षत्र अर्थात् न्यायी शासक वर्ग ही वरुण है। मन्ता ही ब्रह्म है और कर्त्ता ही क्षत्रिय है॥ १॥ पहले ब्रह्म और क्षत्र ये दोनों पृथक्-पृथक् रहते थे। ब्रह्म जो मित्र है वह तो क्षत्र वरुण के बिना पृथक् रह सका, किन्तु क्षत्र जो वरुण है वह ब्रह्म मित्र के बिना न रह सका॥ २॥ क्योंकि ब्रह्म मित्र की आज्ञा बिना क्षत्र वरुण जो-जो कर्म किया करता था वह-वह उसके लिए वृद्धिप्रद नहीं होता था॥ ३॥ सो इस क्षत्र वरुण ने ब्रह्म मित्र को बुलाया और कहा कि मेरे समीप आप रहें। (संसृजाव है) हम दोनों मिल जाएं। मिलकर सर्व व्यवहार करें। मैं आपको आगे करूँगा और आपकी आज्ञानुसार मैं कर्म करूँगा। ब्राह्मण इसको स्वीकार कर दोनों मिल गये॥ ४॥ तब से ही मैत्रा वरुण नाम का एक ग्रह अर्थात् एक पात्र होता है॥ ४॥ इस प्रकार पौरोहित्य चला। इस कारण सब ब्राह्मण, सब क्षत्रिय की पौरोहित्य-वृत्ति की कामना नहीं करता, क्योंकि ये दोनों मिलकर सुकृत और दुष्कृत कर्म करते हैं अर्थात् दोनों ही पाप-पुण्य के भागी होते हैं। वैसा ही सब क्षत्रिय सब ब्राह्मण को पुरोहित नहीं बनाता, क्योंकि दोनों मिलकर सुकृत और दुष्कृत करते हैं। तब से क्षत्रिय वरुण जो-जो कर्म ब्राह्मण मित्र से आज्ञा पाकर किया करता था वह-वह कर्म उसको वृद्धिप्रद हुआ। इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि ब्रह्म को मित्र तथा क्षत्र को वरुण कहते हैं और इन दोनों को मिलकर ही व्यवस्था करनी चाहिए। इसमें यदि शासक वर्ग, ज्ञानी वर्ग की अधीनता को स्वीकार नहीं करे तो उसका निर्वाह कदापि न हो। अब आप वशिष्ठ और अगस्त्य दोनों मैत्रावरुण क्यों कहलाते

स प्रकेत उभयस्य विद्वान् सहस्रदान उत वा सदानः।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः॥

—ऋ० ७।३३।१२

वेदों में एक यह भी रीति है कि गुण में भी चेतनत्व का आरोप कर गुणिवत् वर्णन करने लगते हैं। राज्य नियम से लोक ज्ञानी विद्वान् महाधनाढ्य होते हैं अतएव वह नियम ही ज्ञानी, विद्वान्, महाधनाढ्य आदि कहा जाता है। (सः+प्रकेतः) वह परम ज्ञानी (उभयस्य+विद्वान्) ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों सुखों को जानता हुआ वसिष्ठ (सहस्रदानः) बहुत दानी होता है। (उत वा+सदानः) अथवा सर्वदा दान देता ही रहता है। कब? सो आगे कहते हैं—(यमेन) ब्रह्म क्षत्रों के प्रबल दण्डधारा से (ततम्+परिधिम्) विस्तृत व्यापक परिधि रूप वस्त्र को (वयिष्यन्) बुनता हुआ (वसिष्ठः) वह सत्य धर्म (अप्सरसः+परि जज्ञे) सर्व संस्थाओं को लक्ष्य करके उत्पन्न होता है। अब आगे सार्वजनीन परम हितकारी सिद्धान्त कहते हैं—

सत्रे ह जाता विषिता नमोभिः कुम्भेरेतः सिषिचतुः समानम्।
ततोह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम्॥ १३॥
उक्थभृतं सामभृतं विभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्रवदात्यग्रे उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः॥

—ऋ० ।७।३३।१४॥

सत्र=सतांत्रः सत्रः। सज्जनों की जो रक्षा करे, उस यज्ञ का नाम सत्र है। अथवा जो सत्य यज्ञ है, वही सत्र है। सम्पूर्ण प्रजाओं के हितसाधक उपायों के बनाने के लिए जो अनुष्ठान है, वही महासत्र है। कुम्भ=वासतीवर कलश अर्थात् सुन्दर उत्तम-उत्तम जो बसने के ग्राम-नगर हैं वे ही यहाँ कुम्भ हैं। जैसे कुम्भ में जल स्थिर रहता है तद्वत् ग्राम में बसने पर मनुष्य स्थिर हो जाता है। अतः सर्व भाष्यकार, इस कुम्भ का नाम वासतीवर रखा है। मान=माननीय। जिसका सम्मान सब कोई करे। मापनेहारा, परीक्षक इत्यादि। **अथ मन्त्रार्थ**—(सत्रे+ह+जातौ) यह प्रसिद्ध बात है कि जब बहुत सम्मति से सत्र में दीक्षित होते हैं और (नमोभिः+इषिता) सत्कार से जब अभिलाषित होते हैं अर्थात् जब ब्रह्मसमूह और क्षत्रसमूह को बड़े सत्कार के साथ

सर्व हितसाधक धर्मप्रणेतृ सभारूप महायज्ञ में प्रजाएँ बुलाकर धर्म नियम बनवाती हैं तब (समानम्+रेतः+कुम्भे+सिषिचतुः) वे मित्र और यरुण अर्थात् ब्रह्म और क्षत्र दोनों मिलकर समान रूप से रेत=रमणीय धर्मरूप प्रवाह को प्रत्येक ग्राम रूप कलश में सींचते हैं। (ततः+ह+मानः+उदियाय) तब सबका मापनेहारा, सर्व को एक दृष्टि से देखनेहारा एक मानने योग्य नियम उत्पन्न होता है। (ततः+ मध्यात्+वसिष्ठम्+ ऋषिम्+जातम्+आहुः) और उसी के मध्य से वसिष्ठ ऋषि को उत्पन्न कहते है ॥ १३ ॥ इसका आशय विस्पष्ट है अब आगे उपदेश देते हैं कि प्रजामात्र को उचित है इस वसिष्ठ का सत्कार करे। (प्रतृदः) हे अत्यन्त हिंसक पुरुषो! हे प्रजाओं में उपद्रवकारी नरो! (वः+वसिष्ठः+ आगच्छति) तुम्हारे निकट राष्ट्र नियम आता है। (सुमनस्यमानाः) प्रसन्न मन होकर तुम (एनम्) इस धर्म नियम को (उप+आध्वम्) अपने में देववत् आदर करो। वह वसिष्ठ कैसा है (उक्थभृतम्+सामभृतम्) उक्थभृत्=ऋग्वेदीय होता। सामभृत=उद्‌भाता। (विभर्ति) इन दोनों को धारण किये हुए हैं और (ग्रावाणम्+बिभ्रत्) उग्र प्रस्तर अर्थात् दण्ड को लिए हुए है। यजुर्वेदी अध्वर्यु को भी साथ में रखे हुए है (अग्रे+प्रवदति) और वह आगे-आगे निज प्रभाव को कह रहा है ॥ १४ ॥ जैसा धर्म शास्त्रों में लिखा है कि "व्यवराचापि वृत्तस्था" न्यून से न्यून ऋग्वेदी, यजुर्वेदी और सामवेदी तीन मिलकर जिस धर्म को नियत करें उसको कोई भी विचलित न करने पावे। इसी ऋचा से यह नियम बना है। प्रतृद=उतृदिर् हिंसानादरयोः। हिंसा और अनादर अर्थ में तृद् धातु आता है, अर्थात् जो राष्ट्रीय नियमों को हिंसित और अनादर करते हैं, वही यहाँ प्रतृद हैं। अब और भी अर्थ विस्पष्ट हो जाता है। धर्म नियम किसके लिए बनाए जाते हैं। निःसन्देह उन दुष्ट पुरुषों को नियम में लाने के लिए ही धर्म की स्थापना होती है, अतः वेद भगवान् यहाँ कहते हैं कि हे दुष्ट हिंसको और निरादरकारी जीवो! देखो तुम्हारे निकट धर्म आ रहे हैं। इनका प्रतिपालन करो। यह नियम तीनों वेदों की आज्ञानुसार स्थापित हुआ है, यदि इसका निरादर तुमने किया तो तुम्हारे ऊपर महादण्ड पतित होगा। इससे यह भी विस्पष्ट होता है कि वसिष्ठ नाम धर्म नियम का ही है, जो ब्रह्मक्षत्र सभा से सर्वदा सिक्त होता रहता है।

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उपसेदुर्वसिष्ठा ॥

७। ३३। ९

वसिष्ठाः=यहाँ वसिष्ठ शब्द बहुवचन है। इस मण्डल में बहुवचनान्त वसिष्ठ शब्द कई एक स्थान में प्रयुक्त हुआ है। (ते वसिष्ठाः) वे-वे धर्म नियम (इत्) ही (निण्यम्) अज्ञानों से तिरोहित=ढँके हुए (सहस्रवल्शम्) सहस्र शाखायुक्त उस-उस स्थान में (हृदयस्य+प्रकेतैः) हृदय के ज्ञान-विज्ञानरूप महाप्रकाश के साथ (संचरन्ति) विचरण कर रहे हैं। (यमेन+ ततम्+परिधिम्) दण्ड की सहायता से व्यापक परिधि रूप वस्त्र को (वयन्तः) बुनते हुए (अप्सरसः+उपसेदुः) उस-उस संस्था के निकट पहुँचते हैं ॥

अब मैंने यहाँ कई ऋचाएँ उद्धृत की हैं। विद्वद्गण विचार करें कि वसिष्ठ शब्द के सत्यार्थ क्या हैं? इन्हीं ऋचाओं को लेकर सर्वानुक्रमणी वृहद्देवता और निरुक्त आदि में जो-जो आख्यायिकाएँ प्रचलित हुई हैं, उनसे भी यही अर्थ निःसृत होते हैं। तद्यथा वृहद्देवता—

उतासि मैत्रावरुणः। —ऋ०। ७। ३३। ११

ऋचा की सायण व्याख्या में वृहद्देवता की आख्यायिका उद्धृत है, वह यह है—

तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरस मुर्वशीम्। रेतश्चस्कन्द तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे। तेनैव तु मुहूर्त्तेन वीर्य्यवन्तो तपस्विनौ। अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः। बहुधा पतितं रेतः कलशेच जले स्थले। स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिसत्तमः। कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः। उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपः। मानेन संमितोयस्मात् तस्मात् मान इहो च्यते। इत्यादि ॥

अदिति के पुत्र मित्र और वरुण हुए। वे दोनों किसी यज्ञ में गये। वहाँ उर्वशी को देख साथ ही दोनों का रेत गिर गया। वह रेत कुछ घड़े में और कुछ स्थल में जा गिरा। स्थल में जो गिरा उससे वसिष्ठ और कलश में जो गिरा उससे अगस्त्य उत्पन्न हुए। अतएव इन दोनों को मैत्रावरुण कहते हैं, क्योंकि ये दोनों मित्र और वरुण के पुत्र हैं। अगस्त्य जिस कारण घट से उत्पन्न हुए, अतः इनके घटयोनि, कलशज आदि भी नाम हैं।

भागवत

भागवतादि पुराणों ने वसिष्ठ को शुद्ध दिखलाने के लिए एक विचित्र कथा गढ़ी है। इक्ष्वाकु पुत्र निमि राजा ने वसिष्ठ को बुलाकर यज्ञ करवाने को कहा, परन्तु वसिष्ठ को पहले इन्द्र ने बुलाया था, अत: ''मैं इन्द्र को प्रथम यज्ञ करवा आपका यज्ञ आरम्भ करूँगा'' ऐसा कह वसिष्ठ जी इन्द्र के यज्ञ में चले गये। इधर, निमि ने अन्य ऋत्विकों को बुला यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। लौटने पर अपने यजमान का ऐसा अधैर्य देख वसिष्ठ ने निमि को शाप दिया कि तुझसे शरीर गिर जाए। निमि ने भी गुरु को अधर्मी देख शाप दिया कि तेरी भी यही गति हो ''अशपत्पतताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः'' निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्त्तिने। तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्म मजानतः। भाग० ९। १३। ५॥ इस प्रकार शापग्रस्त हो वसिष्ठ जी मित्र और वरुण के वीर्य से उर्वशी में पुनः उत्पन्न हुए ''मित्रवरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः''। भागवत ९। १३। ६॥ वसिष्ठ के पुत्र शक्ति। शक्ति के पराशर। पराशर के व्यास। व्यास के पुत्र शुक। अत: शुकाचार्य परीक्षित् से कहते हैं कि हे राजन्! मित्र और वरुण के रेत से उर्वशी में मेरे पितामह उत्पन्न हुए।

समीक्षा—यद्यपि वेद में जल स्थल और वासतीवर आदि का वर्णन नहीं तथापि वृहद्देवता ऐसा कहता है। वेदों के एक ही स्थान कुम्भ में दोनों ऋषियों की उत्पत्ति कही गई है। इसका भी भाव यह है कि क्या जल और क्या स्थल दोनों स्थानों में धर्म नियम तुल्य रूप में प्रचलित होते हैं। अब पुराणों की बात पर दृष्टि दीजिये। पुराण सर्वदा एक न एक भूल करते ही रहते हैं। पुराण ब्रह्मा से सारी उत्पत्ति मानते हैं, परन्तु बहुत सी बातें प्राचीन चली आती हैं जहाँ ब्रह्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं, किन्तु पौराणिक समय में वे बातें इतनी प्रचलित थीं कि उनको दूर नहीं कर सकते थे। उर्वशी में मित्रावरुण द्वारा वसिष्ठ की उत्पत्ति और वही सूर्यवंशीय राजाओं का गुरु है, यह बात अति प्रसिद्ध थी। इस कथा को पुराण लोप नहीं कर सकते थे। अत: इनको एक नवीन कथा गढ़नी पड़ी। पुराणों की दृष्टि में असम्भव कोई बात नहीं, अत: ब्रह्मा से लेकर केवल छः पीढ़ियों में हजारों चौयुगी काल को समाप्त कर देते हैं। कहाँ सृष्टि की आदि में ब्रह्मा का पुत्र वसिष्ठ! और कहाँ केवल छठी पीढ़ी में शुकाचार्य के कलि युगस्थ परीक्षित्

को कथा सुनाना। कितना लम्बा-चौड़ा यह गप्प है॥

यास्क की सम्मति—उर्वशी शब्द का व्याख्यान करते हुए यास्क भी ''तस्या दर्शनान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कन्द'' उसके दर्शन से मित्र और वरुण का रेत स्खलित हो गया, ऐसा लिखते हैं। आश्चर्य की बात है कि वे भाष्यकार निरुक्तकार आदि भी ऐसी-ऐसी जटिल कथा का आशय न बतला गये।

वसिष्ठ पुरोहित—यही उर्वशी पुत्र मैत्रावरुण वसिष्ठ राजवंशों के पुरोहित थे। यही आशय सर्वकथाओं से सिद्ध होता है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में इस प्रकार लिखा है—''कस्य चित्त्वथ कालस्य मैत्रावरुणसंभवः''। वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे इक्ष्वाकुदैवतम्॥ ७॥ तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्रमनिन्दितम्। वव्रे पुरोधसं सौम्यं वंशस्यास्य हिताय नः॥ ८॥ रा०। उ०। सर्ग ५७॥ सूर्यवंशी के आदि राजा इक्ष्वाकु हैं। इन्होंने इसी उर्वशी सम्भव मैत्रावरुण वसिष्ठ को अपने पुरोहित बनाया। शुकाचार्य बड़े आदर के साथ इनको ही अपना प्रपितामह कहते हैं। अब विचार करने की बात है कि इस सबका यथार्थ तात्पर्य क्या है ? मैं अभी जो पूर्व में लिख आया हूँ, यही इसका वास्तविक तात्पर्य है। वसिष्ठ कोई आदमी नहीं हुआ, न उर्वशी आदि ही कोई देहधारी जीव है। इस प्रकार मित्र और वरुण सामान्य वाचक शब्द हैं किसी खास व्यक्ति वाचक नहीं। अब मैं नामार्थ से भी उस विषय को दृढ़ करता हूँ।

वसिष्ठादि नामों के अर्थ—'वसु' शब्द से यह वसिष्ठ बना है। जो सबके हृदय में बसे, वह वसु तथा जो अतिशय वास करनेहारा है, वह वसिष्ठ। मैं लिख आया हूँ कि यहाँ धर्म नियम का नाम वसिष्ठ है। निःसन्देह वे ही धर्म नियम संसार में प्रचलित होते हैं जो सबके रुचिकर हों, जिन्हें सब कोई अपने हृदय में वास दे सकें। अतः धर्म नियम का नाम यहाँ वसिष्ठ रखा है। वसु शब्द, धन सम्पत्ति आदि अर्थ में भी आया है, अतः जो नियम अतिशय सम्पत्तियों को उत्पन्न करने हारा हो, प्रजाओं में जिनसे चारों तरफ अभ्युदय हो, उसी नियम का नाम वसिष्ठ है। अगस्त्य=अग+पर्वत, यहाँ अचल रूप से स्थिर जो प्रजाओं में नाना अज्ञान, उपद्रव विघ्न हैं वे ही अग रूप हैं, उन्हें जो विध्वंस करे वह अगस्त्य ''अगान् विध्नान् अस्यति विध्वंसयति यः

सोऽगस्त्यः''। वेद में आया है कि अगस्त्यो यत्त्वा विश आजभार। ७। ३३। १०॥ वसिष्ठ को अगस्त्य प्रजाओं के निकट ले जाते हैं अर्थात् ब्रह्मक्षत्रसभा से निश्चित धर्म नियम को साथ ले अगस्त्य (प्रचारकगण) प्रजाओं के समस्त विघ्नों को विध्वस्त कर देते हैं, अतः प्रचार वा प्रचारक मण्डल का नाम यहाँ अगस्त्य कहा है। उर्वशी जिसको बहुत आदमी चाहें वह उर्वशी ''याम् उरवो वहव उशन्ति कामयन्ते सा उर्वशी''। पाठशाला, न्यायशाला आदि संस्थाओं को जहाँ-जहाँ बहुत आदमी मिलकर स्थापित करना चाहते हैं वहाँ-वहाँ ब्रह्मक्षत्रसभा की ओर से वह-वह संस्था स्थापित होती है। अतः यहाँ संस्था का नाम उर्वशी है।

आवश्यक नियम—वसिष्ठ अगस्त्य और उर्वशी आदि शब्द वेदों में अनेकार्थ प्रयुक्त हुए हैं। किन्तु अपने-अपने प्रकरण में वही एक अर्थ सदा स्थिर रहेगा अर्थात् जहाँ मैत्रावरुण वसिष्ठ कहा जाएगा उस प्रकरण भर में यही अर्थ होगा और ऐसे ही अर्थ को लेकर संगति भी लगती है।

वसिष्ठ राजपुरोहित कैसे हुए—अब आप इस बात को समझ सकते हैं कि वसिष्ठ राजपुरोहित कैसे बने। यह प्रत्यक्ष बात है कि नियम बनाने वाले का ही प्रथम शासक नियम होता है अर्थात् जो विद्वान् नियम बनाता है वही प्रथम पालन करता है यदि ऐसा न हो तो वह नियम कदापि चल नहीं सकता। मित्र-वरुण अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मिलकर नियम बनाते हैं, अतः प्रथम इनका ही वह शासक होता है। जिस कारण ब्रह्मवर्ग में स्वभावतः नियम पालन करने की शक्ति है। वे उपद्रवी कदापि नहीं हो सकते, क्योंकि परम धर्मात्मा पुरुष का ही नाम ब्रह्म है। क्षत्रवर्ग सदा उद्दंड उच्छृंखल आततायी अविवेकी हुआ करते हैं, अतः इनके लिए धर्म नियमों की बड़ी आवश्यकता है जिनसे वे सुदृढ़ होकर अन्याय न कर सकें। आजकल भी पृथिवी पर देखते हैं कि क्षत्रवर्ग ही परम उद्दण्ड हो रहे हैं, इनको ही वश में लाने के लिए बड़ी-बड़ी सभा कर प्रजाओं से मिल ब्रह्मवर्ग नियम स्थापित कर रहे हैं, अतः वह वसिष्ठ नामी नियम विशेषकर क्षत्रिय कुलों का ही पुरोहित हुआ। पुरोहित शब्द का यही प्राचीन अर्थ है जो सदा आगे में रहे जिससे सम्राट् भी डरे। जिसका

अनिष्ट महासम्राट् भी न कर सकता हो। जिसके पक्ष में सब प्रजाएँ हों, जो प्रजाओं के प्रतिनिधि होकर सदा उनकी हित की बात करे और राजा को कदापि उच्छृङ्खल ने होने दे। जैसे आजकल रक्षित राज्यों को वश में रखने के लिए रेजिडेण्ट हुआ करता है।

मित्र और वरुण

जैसे बहुत स्थलों में ब्रह्म और क्षत्र शब्द साथ आते हैं तद्वत् मित्र और वरुण शब्द भी पचासों मन्त्रों में साथ-साथ प्रयुक्त हुए हैं। कहीं असमस्त और कहीं समस्त। समस्त होने पर मित्रावरुण ऐसा रूप बन जाता है। मित्र और वरुण के दो-एक उदाहरण मात्र से आपको ज्ञात हो जाएगा कि यह ब्रह्मक्षत्र का वर्णन है; यथा—

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिसादसम्।
धियं घृताचीं साधन्ता। —ऋ०। १। २। ६॥

पूतदक्ष=पवित्र बल, जिसका बल परम पवित्र है। रिसादस= रिस+अदम्। रिस=हिंसक+पुरुष। अदम्=भक्षक। हिंसकों का भी भक्षक। धी=कर्म, ज्ञान। घृताचीं=घृतवत्, शुद्ध घृतवत् पुष्टिकारक आदि। **अथ मन्त्रार्थ**—(पूतदक्षं+मित्रम्+रिसादसम्+वरुणञ्च+हुवे) पवित्र बल धारी मित्र और दुष्ट हिंसकों के विनाशक वरुण को बुलाता हूँ जो दोनों (घृताचीं+धियं+साधन्ता) घृतवत् पवित्र ज्ञान को फैला रहे हैं। घृतवत् विचाररूप दूध से उत्पन्न ज्ञान घृताची है॥

मित्र और वरुण के सम्बन्ध में राजा सम्राट् आदि शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं; यथा—

महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा।
ऋतावाना वृतमा घोषतो बृहत्॥ ४॥
ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू।
घृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः॥ ८॥ —ऋ०। ८। २५

(मित्रावरुणा+महान्ता) ये मित्र और वरुण महान् हैं, (सम्राजा) सम्राट् हैं, (देवौ+असुरा) देदीप्यमान और असुर=निखिल अज्ञान के निवारक हैं, (ऋतावानौ) सत्यवान् हैं और (वृहत्+ऋतम्+आघोषतः) महान् सत्य की ही घोषणा करते हैं॥ ४॥ (ऋतावानौ+सुक्रतू) स्वयं सत्य नियम में बद्ध और सदा शोभन कर्म में परायण मित्र और वरुण

(साम्राज्याय+ निषेदतुः) साम्राज्य सम्बन्धी विचार के लिए बैठते हैं। पुनः वे कैसे हैं (घृतव्रता) सत्यादि व्रतधारी पुनः (क्षत्रिया) परमबलिष्ठ और (क्षत्नम्+ आशतुः) जो परमबल का अधिष्ठता है॥ ८॥ पुनः केवल वरुण के विषय में वर्णन आता है॥

नि षसाद घृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥ १०॥ परिस्पशो निषेदिरे॥ —ऋ० १। २५। १३

(पस्त्यासु) पस्त्या=प्रजा। प्रजाओं के मध्य (साम्राज्याय) राज्य नियम स्थापित करने के लिए वह वरुण व्रतधारी हो बैठता है। इसके चारों तरफ दूतगण बैठते हैं॥

यहाँ देखते हैं कि धर्म के नियमों को बनाने हारे व्यवस्थापकों को जिस-जिस योग्यता की आवश्यकता है उस-उस का यहाँ निरूपण है। प्रथम सत्य की बड़ी आवश्यकता है, अतः मित्र और वरुण के विशेषण में जितने ऋत वा सत्यवाचक शब्द प्रयुक्त हुए हैं उतने अन्य इन्द्रादिकों के लिए नहीं। पुनः अपने व्रत में दृढ़ होना चाहिए। अतः घृतव्रत शब्द के प्रयोग भी भूयोभूयः आता है। पुनः व्यवस्थापकों को अध्यात्म बल भी अधिक चाहिए, अतः क्षत्रिय शब्द आता है। इस प्रकार ज्यों-ज्यों विचारते हैं त्यों-त्यों यही प्रतीत होता है कि मित्र और वरुण नाम ब्रह्म क्षत्र का है। इसी ब्रह्म क्षत्र का पुत्र वसिष्ठ है। पुनः वेदों को देख मीमांसा कीजिए, भ्रम में मत पड़िये। वसिष्ठ कोई व्यक्ति विशेष नहीं किन्तु सत्यार्थ का ही नाम वसिष्ठ है। सत्य नियम ही क्षत्रियों का भी शासक है॥

एक बात और यहाँ दिखाने के लिए परम आवश्यक है कि धर्म ही क्षत्र का भी क्षत्र है अर्थात् परम उद्दण्ड राजाओं को वश में करने हारा केवल धर्मनियम है। वह यह है—

स नैव व्यभवत्तच्छ्रेयोरूपमत्यसृजत धर्मं तदेतत् क्षत्त्रस्य क्षत्रं यद्धर्मस्तस्माद्धर्मात्परं नास्त्यथो अबलीयान् बलीयांसमाशसते धर्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्तस्मात् सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीत्येतद्धैववैतदुभयं भवति॥

—वृ० उ० १। ४। १४॥

आशय—वृहदारण्यकोपनिषद् में यह वर्णन आता है कि जब ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणवर्ग, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को बना चुके तो भी देश

की वृद्धि नहीं हुई है। तब अत्यंत कल्याण स्वरूप जो धर्म है उसको सबसे बढ़िया बनाया। क्षत्र का भी शासक वही धर्म हुआ, अत: धर्म से परे कोई पदार्थ नहीं। जैसे राज्य की सहायता से वैसे ही धर्म की सहायता से एक महादुर्बल पुरुष भी परम बलिष्ठ पुरुष का साम्मुख्य करता है। वह धर्म सत्य ही है। अत: सत्य बोलने वाले को देखकर लोक कहते हैं कि यह धर्म कह रहा है। इसी प्रकार धर्म के व्याख्याता को सत्यवादी कहते हैं॥

यहाँ पर यह वर्णन आता है कि क्षत्रियों के भी शासक धर्म नियम हैं। इन नियमों में बद्ध होकर यदि कोई क्षत्रिय अन्याय करे तो प्रजाएँ उसको तत्काल रोक देती हैं। अब आप समझ सकते हैं कि वसिष्ठ के अधीन समस्त राजवंश कैसे हुए। नि:सन्देह ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्गों से निर्धारित जो धर्म व्यवस्था है, उसका पालन यदि कोई न करे तो कब उसे कल्याण है, अत: सर्वराजाओं ने वसिष्ठ नामधारी धर्मनियम को ही अपना पुरोहित बनाया॥

वसिष्ठ और चोरी

ऋग्वेद के सम्पूर्ण सप्तम मण्डल के द्रष्टा वसिष्ठ हैं। बहुत थोड़े से मन्त्रों के द्रष्टा वसिष्ठपुत्र भी माने जाते हैं। इसी मण्डल में वसिष्ठ सम्बन्धी बहुत सी प्रचलित वार्त्ताओं का बीज पाया जाता है। "अमीवहा वास्तोष्पते" इत्यादि ५५ वें सूक्त को प्रस्वापिनी उपनिषद् नाम से अनुक्रमणिका कार लिखते हैं। वृहद्देवता इसके विषय में विलक्षण कथा गढ़ती है, वह यह है—"एक समय वरुण के गृह पर वसिष्ठ गए, इनको काटने के लिए भौंकता हुआ एक महाबलिष्ठ कुत्ता पहुँचा। तब वशिष्ठ ने "यदर्जुन" इत्यादि दो मन्त्रों को पढ़कर उसको सुलाया और पश्चात् अन्यान्य मन्त्रों से वरुण सम्बन्धी सब मनुष्यों को भगा दिया।" कोई आचार्य इस सूक्त पर यह आख्यायिका कहते हैं— "एक समय तीन रात्रि तक वसिष्ठ को भोजन न मिला तब चौथी रात्रि चोरी करने को वरुण के गृह पहुँचे। द्वार पर बहुत से आदमी और कुत्ते सोए हुए थे। इनको सुलाने के लिए वसिष्ठ जी ने इस ५५वें सूक्त को देखा और उसका जप किया" इत्यादि बातें सायण ने इस सूक्त के भाष्य के आरम्भ में ही दी हैं, अत: प्रथम सूक्त के शब्दार्थ कर आशय बतलाऊँगा॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वारूपाण्याविशन्।
सखा सुखेव एधि नः ॥ १ ॥ —ऋ० ७। ५५

अमीवहा=अमीव+हा। अमीव=रोग। हा=नाशक। वास्तोष्पते= वास्तोः+पते। वास्तु=गृह। संसाररूप गृहपति परमात्मा। यहाँ कोई उपासक कहता है कि (वास्तोः+पते) हे गृहाधिदेव! समस्त गृहों में निवास करने हारे परमात्मन्! (अमीवहा) आप मानसिक, आत्मिक तथा दैहिक सर्व रोग के निवारक हैं। (विश्वा+रूपाणि+आविशन्) आप सर्व रूपों में प्रविष्ट हैं। हे भगवान्! (सखा) मित्रवत्, परमप्रिय और (सुशेवः) परम सुखकारक (नः+एधि) हमारे लिए हो जाइए। इतनी ईश्वर से प्रार्थना कर अब आगे कहते हैं कि—

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे। वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्केसु बप्सतो नि षु स्व ॥२ ॥ स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर। स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ३ ॥ त्वं सूकरस्य दर्दृहि तवदर्दर्तु सूकरः। स्तोतॄनिन्द्रस्य० ॥ ४ ॥
—ऋ० ७। ५५ ॥

अर्जुन=श्वेत, सफेद। सारमेय=सरमा का पुत्र। देवसुनी का नाम सरमा है। दत्=दांत। ऋष्टि=आयुध, अस्त्र। राय=आओ। रायसि= गच्छसि=जाते हो। **अथ मन्त्रार्थ**—(अर्जुन+सारमेय) हे श्वेत सारमेय! (पिशंग) हे कहीं-कहीं पिंगलवर्ण! कुत्ते (यद्+दतः+यच्छसे) जब तुम अपने दाँतों को दिखलाते हो तब वे दाँत (स्रक्केषु+उप) ओष्ठ के कोने में (ऋष्टयः+इव+वि+भ्राजन्ते) आयुध के समान चमकने लगते हैं और (बप्सतः) हमको खाने के लिए दौड़ते हो ॥ २ ॥ (सारमेय+ पुनःसर) हे सारमेय! हे पुनःसर! पुनः-पुनः मेरी ओर आने वाले कुत्ते! (स्तेनं+ तस्करम्+राय) तू चोर की ओर जा। (इन्द्रस्य+स्तोतृन्+ अस्मान्+किम्+ रायसि) परमात्मा के स्तुतिपाठक हमारी ओर तू क्यों आता है और (दुच्छुनायसे) क्यों हमको बाधा देता है। (नि+सु+स्वप) हे कुत्ते! तू अत्यन्त सो जा ॥ ३ ॥ (त्वम्+सूकरस्य+दर्दृहि) तु सूकर को काट खा (सूकरः+तव+दर्दर्तु) और सूकर तुझको काट खाय (इन्द्रस्य+स्तोतृन्०) इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४ ॥

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वय मभितोजनः ॥ ५ ॥

य आस्ते यश्चरति यश्च पश्यति नोजनः ।
तेषां संहन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ६ ॥

—ऋ० ७।५५

(माता+सस्तु+पिता+सस्तु) हे सारमेय! तेरे माता-पिता सो जाएँ। जो यह बड़ा कुत्ता है वह भी सो जाए। (विश्पतिः) जो गृहपति है वह भी सो जाए इस प्रकार सब ही ज्ञाति और चारों तरफ के आदमी सो जाएँ। जो बैठा है, जो चल रहा है, जो हमको देखता है, उन सबकी आँखों को हम फोड़ते हैं। वे सब राजगृह के समान अचल होवें॥ ६ ॥

प्रोष्ठेशयाः वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियोयाः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥ ८ ॥

—ऋ० ७।५५

(याः+नारीः+प्रोष्ठेशयाः) जो स्त्रियाँ आंगन में सो गई हैं, (वह्येशयाः) जो किसी बिछौने पर सोई हुई हैं, (तल्पशीवरीः) जो पलंग पर सोई हुई हैं, (याः+स्त्रियः+पुण्यगन्धाः) जो स्त्रियां पुण्य गन्धवाली हैं, (ताः+सर्वा+ स्वापयामसि) उन सबको मैं सुलाता हूँ॥ ८ ॥

आशय—सरतीति सरमा। भोगविलास की ओर दौड़ने वाली जो यह महातृष्णा है यही शुनी अर्थात् कुत्ती है और इसी कुत्ती के ये आँख, कान आदि इन्द्रिय गुलाम हैं, अतः इसका नाम सारमेय है। अर्जुन=श्वेत। इन इन्द्रियों में कोई श्वेत=सात्त्विक और कोई पिशंग अर्थात् राजस, तामस नाना वर्ण के हैं। ये दोनों प्रकार के इन्द्रिय परम दुःखदायी हैं और यह भी प्रत्यक्ष है कि इन्द्रियों का व्यवहार कुत्ते के समान है। अतः कोई उपासक प्रार्थना करता है कि हे कुत्ते समान इन्द्रियगण! मुझे तुम क्यों दुःख देते हो। तुम तो जाओ अर्थात् शिथिल हो जाओ। तुम जानते नहीं कि हम परमात्मा के उपासक हैं, फिर तुम कैसे हमको काट सकते हो, तुम सो ही जाओ। मैं इन सब कुत्तों की आँखें फोड़ डालता हूँ इत्यादि। इससे जो कोई सचमुच कुत्ते को सुलाने का भाव समझते हैं वे बड़े अज्ञानी हैं। क्या मन्त्र पढ़ने से कुत्ते सो जाएँगे? वेद के गूढ़-गूढ़ आशय को न समझ कैसी अज्ञानता लोगों ने फैलाई है। यहाँ सारमेय आदि शब्द इन्द्रिय वाचक हैं और "मैं स्त्रियों को सुलाता हूँ" इसका आशय यह है कि जब इन्द्रियगण अति

प्रबल होते हैं तब सबसे पहले स्त्रियों की ओर दौड़ते हैं। विषयी पुरुषों के लिए यह एक महाविषवल्ली है। अतः उपासक कहता है कि "मैं सब स्त्रियों को भी सुलाता हूँ" अर्थात् परमात्मा से प्रार्थना है कि स्त्रियों की ओर भी मेरा मन न जाए इत्यादि इसका सुन्दर भाव है। इससे चोरी की कथा गढ़ने वाले कदापि वेद नहीं समझ सकते। इसमें वसिष्ठ की कहीं भी चर्चा नहीं। यदि मान लिया जाए कि इस मण्डल के द्रष्टा वसिष्ठ होने से वसिष्ठ ही ऐसी प्रार्थना करते हैं तो भी कोई क्षति नहीं। मैं वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में विस्तार से दिखला चुका हूँ कि वैदिक पदार्थानुसार ऋषियों के नाम दिये जाते हैं। जिस कारण वसिष्ठ अर्थात् सत्यधर्म की व्यवस्था का विषय इस मण्डल में है, अतः इसके द्रष्टा का नाम भी वसिष्ठ हुआ। सबको ऐसी प्रार्थना नित्य ही करनी चाहिए।

वसिष्ठ सम्बन्धी अन्यान्य कथाओं के बीज—सर्वानुक्रमणी, वृहद्देवता, यास्ककृत निरुक्त और ताण्ड्य महाब्रह्मण आदि ग्रन्थों में भी बहुत सी कथाओं के बीज पाये जाते हैं। एक स्थल में यास्क कहते हैं कि "वसिष्ठोवर्षकामः पर्जन्यं तुष्टाव। तं मण्डूका अन्वमोदन्ते। स मण्डूका ननुमोदमानान् दृष्ट्वा तुष्टाव"। निरुक्त ९। ६। वर्षा की इच्छा से वसिष्ठ मेघ की स्तुति करने लगे, मण्डूकों ने अर्थात् मेंढकों ने उनके वचन का अनुमोदन किया, अनुमोदन करते हुए मेंढकों को देख वसिष्ठ जी उनकी ही स्तुति करने लग गए और इनकी स्तुति में १०३वें सूक्त को देखा। हाँ, इस सूक्त में मण्डूकों का वर्णन तो अवश्य ही है किन्तु वसिष्ठ जी मण्डूकों की स्तुति करने लग गए, यह कथा इसमें कहीं भी नहीं है।

दूसरी जगह यास्क कहते हैं कि "पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षस्तस्माद् विपाडुच्यते" मरने की इच्छा करते हुए वसिष्ठ के पास इस नदी में टूटे थे, अतः इसको विपाट् कहते हैं। ऋग्वेद ७। ३२ सूक्त की अनुक्रमणिका में लिखा है कि "सौदासैरग्नौ प्रक्षिप्यमाणः शक्तिरन्त्यं प्रगाथमालेभे। सोऽर्धर्च उक्तेऽदह्यत। तं पुत्रोक्ते वसिष्ठः समापययेति शाट्यायनकम्। वसिष्ठस्यैव हतपुत्रस्यार्षमिति ताण्डकम्।" शाट्यायन ब्राह्मण के अनुसार, जब सुदा राजा के पुत्रों ने वसिष्ठ पुत्र शक्ति को अग्नि में फेंक दिया तब इसने इस सूक्त के अन्तिम प्रगाथ को पाया। किन्तु वह आधी ऋचा की समाप्ति पर स्वयं दग्ध हो गया, पश्चात् पुत्रोक्त को वसिष्ठ ने समाप्त किया। ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार, इस

अन्तिम ऋचा के भी ऋषि वसिष्ठ ही हैं। जब वसिष्ठ के पुत्र हत हुए तब इन्होंने इसको देखा। ऋ० ७। १०४ वें सूक्त को लक्ष्य कर वृहद्देवता में लिखा है कि 'ऋषिर्ददर्श रक्षोघ्नं पुत्रशोकपरिप्लुतः। हते पुत्र शते क्रुद्धः सौदासैर्दुःखितस्तदा''। जब वसिष्ठ के सौ पुत्र मारे गये तब ऋषि ने इस १०४ वें रक्षोघ्न सूक्त को देखा। इस प्रकार की बहुत-सी बातें प्राचीन ग्रन्थों में भी पाई जाती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वेदों के यथार्थ तात्पर्य नष्ट होने पर विविध आख्यायिकाएँ रची गईं। बहुत-सी कथाएं रूपक में लिखी गई थीं, उनका भी आशय समय पाकर अज्ञात हो गया। मैं अब महाभारतादि में जो वसिष्ठ सम्बन्धी वार्त्ता पाई जाती है, उसको दिखलाऊँगा। वह भी गूढ़ आशय प्रकट करती है अतः ध्यान से पढ़िये और इसके तात्पर्य को अच्छी प्रकार विचारिए।

विश्वामित्र का वंश—वेदों में विश्वामित्र शब्द के प्रयोग बहुत आए हैं।[१] जैसे लोक में विश्वामित्र कौशिक कहाते हैं वैसे वेद में ''कुशिकस्य सूनुः'' ऐसा प्रयोग है, किन्तु वैदिक आशय क्या है, इसका संक्षेप वर्णन चतुर्दश-भुवन में देखिये। वेदों में विश्वामित्रादि की न कोई वंशावली और न कोई अनित्य इतिहास है। वसिष्ठ और विश्वामित्र की शत्रुता का गन्ध भी वेदों में नहीं पाया जाता। सुप्रसिद्ध ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इन दोनों के वैर की कोई चर्चा नहीं। महाभारत वाल्मीकीय रामायण से लेकर आधुनिक ग्रन्थ तक वैसी चर्चा पाई जाती है। मैं बारम्बार लिख चुका हूँ कि महाभारत पुराणादि में भी शतशः गाथाएँ केवल रूपकालंकार में लिखी गई हैं

१. महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः। विश्वा मित्रो यदवहद् सुदासमप्रियायत कुशकेभिरिन्द्र ॥ ९ ॥ विश्वामित्रा अरासत महेन्द्राय वज्रिणे ॥ १३ ॥ ऋग्वेद ३। ५३ ॥ जन्मन् जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ॥ ऋ० ३। १। २१ ॥ इत्यादि यहाँ भी कुशिक और विश्वामित्र का सम्बन्ध देखते हैं। एक सूक्त के विश्वामित्र और जमदग्नि दोनों ऋषि हैं और ऋचा में भी दोनों नाम आए हैं; यथा—''सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नीदमे'' ऋ० १०। १६७। ४। पुराणों के अनुसार विश्वामित्र की बहिन सत्यवती के पुत्र जमदग्नि हैं अर्थात् विश्वामित्र के भागिनेय (भांजा) जमदग्नि हैं। किन्तु वेदों में इस सबका अध्यात्म तात्पर्य है। ''विश्वामित्र ऋषिः'' ऐसा पद यजुर्वेद १३। ५७ में आया है। शतपथ इसका अर्थ करता है 'श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः'। ८। १ ॥

जिनको आज के कतिपय पुरुष तथ्य मान इतिहास समझते हैं। इसमें भी किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं कि उन रूपिकालंकारों का स्वरूप बहुत परिवर्तित होता चला आया है, जिससे झटिति सत्यता का पता नहीं लगता। महाभारत आदि पर्व अध्याय १७४में लिखा है "कान्यकुब्जे महानासीत्पर्थिवो भरतर्षभ। गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभवः। तस्य धर्मात्मनः पुत्र समृद्धबलवाहनः। विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः" कान्यकुब्ज देश के राजा कुशिक के पुत्र गाधि हुए[१] और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए, परन्तु वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड सर्ग ३४ में[२] लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र कुश के वैदर्भी नाम की स्त्री से कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूर्तरजा और वसु नाम के चार पुत्र हुए। कुशनाभ के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हुए। श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध १५वें तथा प्रथम अध्याय में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र मरीचि। मरीचि के पुत्र कश्यप। कश्यप के पुत्र विवस्वान्। विवस्वान् के पुत्र मनु। मनु के पुत्र सुद्युम्न। सुद्युम्न के पुत्र पुरूरवा। पुरूरवा के पुत्र विजय। विजय के पुत्र भीम। भीम के पुत्र काञ्चन। काञ्चन के पुत्र होत्र। होत्र के पुत्र जह्नु। जह्नु के पुत्र पुरु। पुरु के पुत्र बलाक। बलाक के पुत्र अजक। अजक के पुत्र कुश। कुश के पुत्र कुशाम्बु। कुशाम्बु के पुत्र गाधि और गाधि के पुत्र विश्वामित्र हैं। महाभारत, रामायण और भागवत को मिलाइए, वंशावली में कितना भेद है। तब किस प्रकार यह इतिहास माना जाए और ये ग्रन्थ सत्य माने जाएँ। महाभारत का झुकाव वेदार्थ की ओर रहता है। भागवत आदि उसका यथार्थ इतिहास बना देते हैं।

कान्यकुब्ज देश—इस देश का कान्यकुब्ज नाम कैसे हुआ, इसकी कथा वाल्मीकि रामायण में विस्तार से उक्त है। "कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशत मनुत्तमम्। जनयामास धर्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन॥ ११॥ रा०। बा०। सर्ग ३४। राजा कुशनाभ की घृताची नाम की स्वर्गवेश्या में एक सौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वायु देवता शत कन्याओं को एक समय उद्यान भूमि में देख अति व्याकुल हो इनसे बोले कि आप सब

१. प्राचीन ग्रन्थों में गाधि के स्थान में गाथी शब्द आता है।

२. सर्ग अध्याय आदि का पता आजकल बड़ा गड़बड़ हो रहा है, अतः ग्रन्थ देखकर पता लगा लेना उचित है।

ही मेरे साथ विवाह कर लीजिये। कन्याओं ने मिलकर कहा कि "अन्तश्चरसि भूतानां सर्वेषां किल मारुत। प्रभावज्ञाः स्म ते सर्वाः किमस्मानवमन्यसे॥" ३४। १८। हे मारुत! आप सब प्राणियों के भीतर विचरण कर रहे हैं, आपका प्रभाव हम जानती हैं। हमारा निरादर क्यों आप करते हैं। कुशनाभ की हम कन्याएँ हैं। अपने कुल मर्यादा की रक्षा कर रही हैं। पिता जी हमको जिनके हाथ में समर्पित करेंगे वे ही हमारे स्वामी होंगे, इत्यादि बहुत वादानुवाद करने से वायु देव कुपित होकर "तासां तद्वचनं श्रुतवा वायुः परमकोपतः। प्रविश्य सर्वगात्राणि बभञ्ज भगवान् प्रभुः"॥ २२॥ उन कन्याओं के गात्रों में पैठ तोड़-मरोड़ कर उन कन्याओं को कुब्जाएँ बना दीं, "यद्वायुनाच ताः कन्यास्तत्र कुब्जी कृताः पुरा। कन्यकुब्जमितिख्यातं ततः प्रभृति तत्पुरम्"॥ ३९॥ जिस कारण वायु ने उन कन्याओं को वहाँ कुब्जाएँ कर दी, अतः उस नगर का नाम कान्यकुब्ज हुआ। पश्चात् इन शत कन्याओं का विवाह चूली राजा के पुत्र ब्रह्मदत्त से हुआ है। ऐसे-ऐसे शतशः गप्प रामायण-महाभारत में भी बहुत भरे पड़े हुए हैं। यह ब्रह्मदत्त भी किसी गन्धर्वी के उदर से व्यभिचार से उत्पन्न हुआ था।

विश्वामित्र और वशिष्ठ का आश्रम—महाभारत आदि पर्व अध्याय १७४ में लिखा है कि एक समय विश्वामित्र अरण्य में शिकार करते हुए प्यास से अति व्याकुल हो वसिष्ठ जी के आश्रम में पहुँचे। वाल्मीकि-रामायण में भी बालकाण्ड अध्याय ५१ से इस कथा को देखो। राजा को आये हुए देख वसिष्ठ जी यथाविधि सत्कार कर बोले कि हे राजन् विश्वामित्र! आज रात्रि आप ससेन मेरी कुटी को सुशोभित कीजिए, विश्वामित्र ने कहा कि आप वन में तपस्वी हो सत्य की उपासना कर रहे हैं। मेरे साथ बहुत से आदमी हैं, अतः क्षमा माँगता हूँ। इस समय मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। वसिष्ठ के बारम्बार हठ करने पर विश्वामित्र ठहर गये। सब कोई चिन्ता करने लगे कि ऋषि के निकट इतनी धन सामग्री कहाँ से आवेगी, कैसे इतनी सेना को खिला सकेंगे। न कहीं किसी को पकाते हुए देखते न आग, न पानी, न आसन, न वासन। क्या यह ऋषि दिल्लगी तो नहीं कर रहे हैं। रात्रि में हम सब भूखे तो नहीं मरेंगे। इस प्रकार के संकल्प-विकल्प से व्याकुल हो ही रहे थे कि वसिष्ठ जी की आज्ञा से यथायोग्य आसन

विश्वामित्र और सेना के सब पुरुष बैठाये गये। वे आश्चर्य से देखते हैं कि जिसकी जिस पदार्थ पर रूचि है वही पदार्थ उसकी पत्तल पर परोसा हुआ है। राजा विश्वामित्र को भी विस्मय हो रहा है, ऐसे-ऐसे त्रिलोक दुर्भल, विविध प्रकार के लेह्य, चोष्य, पेय, भोज्य, भोजन कहाँ से आते हैं। भोजन कर वे सुसंतुष्ट हुए। किन्तु ऋषि की ऐसी अचिन्त्य विभूतियों को देख विश्वामित्र अति अस्त-व्यस्त हो शबला नन्दिनी कामधेनु की सिद्धि का पता लगा वसिष्ठ के निकट जा बोले कि हे ऋषे! 'अर्बुदेन गवां ब्रह्मन् मम राज्येन वा पुनः। नन्दिनीं सं प्रयच्छस्व भुंक्ष्व राज्यं महामुने'। महाभारत॥ 'ददाम्येकां गवां कोटी शबला दीयतां मम'। रामायण॥ आप एक अर्बुद गाय लेवें। सम्पूर्ण मेरा राज्य ही लेकर भोग करें, किन्तु यह नन्दिनी गौ मुझे दे दीजिये। मैं राजा हूँ। मैं इस गौ से बहुत उपकार कर सकूँगा। आपको ऐसी गाय से क्या प्रयोजन। वसिष्ठ ने बहुत समझा कर कहा कि यह नन्दिनी कदापि मुझसे अलग नहीं हो सकती, आप जैसा चाहें सो करें।

विश्वामित्र उवाच—क्षत्रियोऽहंभवान् विप्रस्तपःस्वाध्यायसाधनः। ब्राह्मणेषु कुतो वीर्यं प्रशान्तेषु धृतात्मसु। अर्बुदेन गवां यस्त्वं न ददासि ममेप्सितम्। स्वधर्मं न प्रहास्यामि नेष्यामि च बलेन गाम्॥ **वसिष्ठ उवाच**—बलस्थश्चासि राजा चा बाहु वीर्य्यश्च क्षतियः। यथेच्छसि तथा क्षिप्रं कुरु मा त्वं विचारय॥ महा०॥ विश्वामित्र ने कहा कि मैं क्षत्रिय हूँ, आप ब्राह्मण हैं। आप में वीर्य कहाँ! एक अर्बुद गौ देने पर भी यदि आप इस नन्दिनी को नहीं देते हैं तो मैं भी अपना धर्म न छोड़ूँगा बलात् गौ ले जाऊँगा। यह सुन वसिष्ठ ने कहा—'एवमस्तु' आप जैसा चाहें शीघ्र ही वैसा कीजिए। विश्वामित्र बहुत विवाद के पश्चात् नन्दिनी को खोल कोड़े से खूब पीटते हुए अपनी सेना से लिवा चले। वह नन्दिनी हुँकार भरती हुई वसिष्ठ के पास आकर बोली कि क्या आप मुझे त्यागते हैं। इस पर वसिष्ठ ने कहा कि ''क्षत्रियाणां बलो तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम्। क्षमा मां भजते यस्माद् गम्यतां यदि रोचते'। म० आ०। १७५॥ क्षत्रियों का बल तेज और ब्राह्मणों का बल क्षमा है। मुझे क्षमा प्राप्त है। यदि तेरी रुचि हो तो जा। मैं तुझे त्यागता नहीं, यदि तू अपने बल पर ठहर सकती है तो रह जा। मैं इसमें कुछ नहीं कहता। ऐसी इच्छा वसिष्ठ की देख क्रोधाग्नि से सूर्य की ज्वाला

के समान देदीप्यमाना हो वह नन्दिनी अपनी सिद्धि के बल से पह्लव, द्राविड, शक, यवन, शवर, काचि, शरभ, पौण्ड्र, किरात, सिंहल, वर्बर, वश, चिवक, पुलिंद, चीन, हून, केरल और म्लेछों के शतशः गणों को पैदाकर विश्वामित्र की सेना के साथ युद्ध करने लगी। महाभारत आदि पर्व १७५। क्षणमात्र में विश्वामित्र की सेना छिन्न-भिन्न हो इतस्ततः भाग गई। विश्वामित्र को बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ। ''धिग् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्'' ऐसा कहते हुए राज्य त्याग वह तप करने को चले गये। पश्चात् ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए इत्यादि कथा इस समय घर-घर प्रसिद्ध है।

वसिष्ठ के पुत्रों को मरवाना—परास्त हो तप करते हुए भी विश्वामित्र वसिष्ठ के अनिष्ट करने से विमुख नहीं हुए। प्रथम राजा कल्माषपाद को अपने पक्ष में कर उससे वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को विश्वामित्र ने मरवाया। पुनः ''शक्तिं तन्तु मृतं दृष्ट्वा विश्वामित्रः पुनः पुनः। वसिष्ठस्यैव पुत्रेषु तद्रक्षः सन्दिदेश ह'' शक्ति को मृत देख अन्य पुत्रों को खाने के लिए उस राक्षस को भेजा। वह सिंह व्याघ्र के समान वसिष्ठ के सब पुत्रों को निगल गया॥

वसिष्ठ की व्यग्रता—विश्वामित्र द्वारा अपने पुत्रों को घातित देख महापर्वत के समान अपने तप में स्थिर रह किसी प्रकार उस शोक को वसिष्ठ धारण करते रहे, किन्तु अन्ततोगत्वा परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए। आत्महत्या की चिन्ता करने लगे। सुमेरु पर्वत के अन्त्य शिखर पर चढ़ वहाँ से गिरे किन्तु शिलाओं का ढेर उनके लिए तूलराशि हो गये, उस पतन से वे न मरे। तब वह अग्नि को प्रज्वलित कर उसमें जा घुसे, किन्तु अग्निदेव इन्हें भस्म करने में सर्वथा असमर्थ रहे। तब बहुत बड़ी शिला कंठ में बाँध समुद्र में जा कूदे। समुद्र देव ने भी इन्हें बाहर निकाल तट पर रख दिया। इस प्रकार अपने को घात करने में असमर्थ देख परम खिन्न हो पुनः आश्रम लौट आए। वहाँ भी पुत्रों से आश्रम को शून्य देख व्याकुल हो पृथिवी पर भ्रमण ही करने लगे॥

विपाशा और शतद्रु—इतने में ही वर्षा ऋतु आ गई। जल से नदियों को खूब भरी देख अपने अंगों को पाशों (फांसों) से बाँध किसी एक नदी में जा गिरे, किन्तु वह नदी ऋषि के प्रताप से डर सब पाशों को काट उनको तट पर ले आई। ''उत्ततार ततः पाशैर्विमुक्तः स

महानृषिः विपाशेति च नामास्या नद्याश्चक्रे महानृषिः।'' तब जिस कारण पाशों से छूट इस नदी से उत्तीर्ण हुए, अतः ऋषि ने इसका नाम 'विपाशा' रख दिया। पुनः शोकान्वित हो भ्रमण करते हुए वे किसी दूसरी नदी में जा गिरे। वह नदी भी भय से अनेकमुखी हो भाग गई, वे तट पर आ पहुँचे। 'सा तमग्निसमं विप्रमनुचिन्त्य। सरिद्वरा। शतधा विद्रुता यस्मात् शतद्रुरिति विश्रुता।' वह नदी जिस कारण अग्निसम उस विप्र को देख शतमुख हो बहने लगी, अतः तब से वह शतद्रु नाम से विख्यात हुई॥

वसिष्ठ का आश्वासन—तब वसिष्ठ अपने को सर्वथा अवध्य जान आश्रम को लौट आए। वहाँ देखते हैं कि शक्ति पुत्र के समान ही कोई वेद पढ़ रहा है। शक्ति की स्त्री अदृश्यन्ती थी। इसी से एक बालक का वेद पढ़ता हुआ द्वादश वर्ष के पश्चात् जन्म हुआ। ''अदृश्यन्त्युवाच। ममं कुक्षौ समुत्पन्नः शक्तेर्गर्भः सुतस्य ते। समा द्वादश तस्येह वेदानभ्यसतोमुने।'' अदृश्यन्ती ने कहा हे मेरे परम पूज्य पितृवदाराध्यदेव! आपके पुत्र से मेरी कुक्षि (पेट) में यह बालक उत्पन्न हुआ है। वसिष्ठ जी वंशधर सन्तान देख पुनः स्वप्रकृतिस्थ हुए और उसका नाम पराशर रखा तथा जिस राजा कल्माषपाद ने विश्वामित्र के कहने से वसिष्ठ के पुत्रों को खाया था उसको भी अपने वश में लाए॥

कल्माषपाद कौन है—श्रीमद्भागवत ९।९ में सुदास राजा का पुत्र कल्माषपाद कहा गया है। इसका पहला नाम मित्रसह है। उन्होंने वन में किसी एक राक्षस को मारा था। उसका भाई बदला लेने के अभिप्राय से पाचक का रूप धर इसी राजा के यहाँ रसोइया नियुक्त हुआ। इसने गुरु वसिष्ठ को एक दिन मानव मांस खिला दिया। इस पर परम क्रुद्ध हो वसिष्ठ ने राजा को शाप दे दिया कि तू राक्षस हो जा। राक्षस होने पर उसका पैर कल्माष अर्थात् नाना रंगवाला या काला हो गया तब से कल्माषपाद ही कहलाने लगा। महाभारत में लिखा है कि वसिष्ठ पुत्र शक्तिं और कल्माषपाद रास्ते के लिए लड़ने लगे। राजा ने शक्ति को कोड़े से पीटा तब शक्ति ने शाप दिया कि तू राक्षस हो जा। दूसरी घटना यह हुई कि किसी एक ब्राह्मण ने बन में राजा को कहा कि मुझे समांस भोजन करवाओ। राजा ने कहा कि मैं

राजधानी में जाके भोजन भेजता हूँ आप यहाँ ही प्रतीक्षा करें, वह गृह पर आकर भूल गये। दो पहर रात्रि में स्मरण कर सूद (पाचक) को बुला यह बात कही। सूद ने कहा कि पाकशाला में इस समय मांस नहीं है, तब राजा ने कहा कि "अप्येनं नरमांसेन भोजयेति पुनः पुनः" यदि मांस नहीं है तो नर मांस ही सही। उस सूद ने नर मांस ला पका उस विप्र के पास ले जाकर खिलाया। विप्र ने नर मांस देख राजा को राक्षस होने का शाप दिया। इन दो शापों से वह मित्रसह राक्षस हो गया। राक्षस होकर प्रथम वसिष्ठ पुत्र शक्ति को ही खा गया। इत्यादि कथा महाभारत आदि पर्व अध्याय १७६ में देखिये। ऋग्वेद में कल्माष वा कल्माषपाद शब्द नहीं आया है। मित्रसह शब्द का भी प्रयोग नहीं है।

भारतीय कथा का आशय

महाभारतादि में जैसी कथा लिखी है, संक्षेप से उसका वर्णन लिखा गया है। अब इसका आशय यहाँ दर्शाना बाकी है। इन कथाओं में कई एक उन्नति देखते हैं। वेद में शक्ति, पराशर, शक्ति की स्त्री अदृश्यन्ती आदि की कहीं चर्चा नहीं, विश्वामित्र एवं वसिष्ठ की शत्रुता और वसिष्ठ की नन्दिनी की कहीं गन्ध नहीं। वसिष्ठ के ऊपर बारम्बार विश्वामित्र का आक्रमण और पुनः विश्वामित्र का ब्राह्मण होना इत्यादि किञ्चिन्मात्र भी अंश वेद में नहीं। पूर्व वर्णन से यह भी ज्ञात हुआ कि महाभारत के बहुत पहले से वसिष्ठ के सम्बन्ध में कुछ ऐसी कथाएँ चली आती थीं जिनका पूरा विवरण तो कहीं इस समय नहीं मिलता, किन्तु शाट्यायन और ताण्ड्य महाब्राह्मण आदि में किञ्चित अंशमात्र का उपन्यास है। महाभारत स्वयं कहता है कि "इदंवासिष्ठमाख्यानं पुराणं परिचक्षते" इस वसिष्ठ आख्यान को लोक बहुत पुराण बतलाते आए हैं। अतः इसके बहुत परिवर्तन और समय-समय पर न्यूनाधिक्य के कारण आशय भी बदलते गये। मैं यहाँ क्रमशः दो-एक आशय प्रकट करता हूँ—१ वसिष्ठ कौन है? वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में इन्द्रियों को वश में लाने की कथाएँ बहुत आया करती हैं। ये ही देव और असुर हैं। क्षण में ही ये इन्द्रिय देव और क्षण में ही असुर बन जाते हैं। प्रत्येक आदमी अपने-अपने जीवन में देखता है कि इन्द्रियों का कैसा महाघोर संग्राम कभी-कभी हुआ करता है, इसी का नाम देवासुर संग्राम है। शुनःशेप, त्रित, दीर्घतमा

आदि की कथा वैदिक इतिहासार्थ निर्णय में देखिए। उसी प्रकार की रूपकालंकार में यह भी एक कथा ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में बनाई गई है, कथाएँ इस प्रकार मिश्रित हो गई हैं कि इनका पता लगाना कठिन काम है।

वसिष्ठ कौन है—प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः। यद्वैनु श्रेष्ठ स्तेन वसिष्ठोऽथो यद्वस्तृतमो वसति तेनोऽएव वसिष्ठः। श० का० ८। अ० १। ब्रा० १॥ यो वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति। वाग्वाव वसिष्ठः। छा० उ० ५। १। २॥ योह वै वसिष्ठां वेद वसिष्ठः स्वानां भवति वाग्वै वसिष्ठा। वृ० उ० ५। १॥ इत्यादि अनेक प्रमाण से सिद्ध है कि ऐसे स्थलों में इन्द्रियों का ही नाम वसिष्ठ है। यहाँ प्राण विसिष्ट धर्मनिष्ठ, वेदवाणी निपुण परम तपस्वी जीवात्मा का नाम वसिष्ठ है "मित्र एव सत्यः। वरुणएव धर्मपतिः। शतपथ ५। ३। मित्र ही सत्य है और वरुण धर्मपति है। जब सत्यधर्म और धर्म का अधिष्ठातृ देव विवेक-विचार आदि दोनों मिलते हैं, तब ही शुद्ध-विशुद्ध जीवात्मा का प्रकाश उर्वशी द्वारा होता है। ये जो वैदिक विविध क्रियाएँ हैं वही उर्वशी अप्सरा है, क्योंकि इसी को बहुत से वैदिक ऋषि चाहते हैं 'उरवो बहव उशन्ति इच्छन्ति यां सा उर्वशी'। बहुत प्रकार की क्रियाएँ होती हैं अथवा उनका अप=जल से सम्बन्ध है, अतः उसको अप्सरा कहते हैं। उसी परम पवित्रता परम सुन्दरी क्रिया को लक्ष्य करके अर्थात् वैदिकी क्रिया को जगत् में प्रसिद्ध करने के लिए मित्र व वरुण शुद्ध जीवात्मा को जन्म देते हैं। उस जीवात्मा का सब ही आदर करते हैं। हृदय रूप पुष्कर के ऊपर बैठा ध्यान करते हैं। ऐसा शुद्ध जीव भी मोहवश नाना दुःख भोगता है। यह विचित्र लीला इस आख्यायिका में दिखलाई जाती है, यथा—यह अविवेकी दुष्ट मन ही विश्वामित्र है। ज्ञान, विज्ञान, सत्य, दान, तप आदि सकल शुभ कर्मों का यही दुष्ट मन महाशत्रु बन जाता है। अतः यह दुष्ट मन सबका शत्रु होने के कारण विश्वामित्र है, इन्द्रियगण ही इसकी सेनाएँ हैं। उन अविवश इन्द्रिय रूप सेनाओं को लेकर यह विश्वामित्र सहस्त्रों की शिकार कर रहा है। यहाँ ऋषि विश्वामित्र से तात्पर्य नहीं। ऋष्यर्थ में विश्व+मित्र शब्द ही विश्वामित्र बन जाता है। जो सत्य धर्म को नष्ट करे, वह अवश्य विश्वामित्र कहावेगा। शुद्ध पवित्र विवेकशालिनी बुद्धि ही नन्दिनी है, यही उपासकों

को विविध अभिष्ट देती है, अतः यही कामधेनु है। बुद्धिमान् पुरुष इसी बुद्धि से संसार को वश में कर लेते हैं। यही अद्भुत पदार्थ उत्पन्न करती है। अब इतनी टिप्पणी के साथ आशय पर ध्यान दीजिये—

आश्रम में विश्वामित्र का प्रवेश—बड़े-बड़े तपस्वी योगी ऋषियों का भी मन चंचल हो जाता है। सांसारिक भोगविलास, बलात्कार उपासक को अपनी ओर खींच लेते हैं, अतः गीता में कहा जाता है कि ''अनिच्छन्नपि वार्ष्णेण बलादिव नियोजितः।'' महाभारत आदिकों में इसके अनेक उदाहरण कहे गये हैं। सोभरि जल में तप करते थे तो भी तपोभ्रष्ट हुए। भोगविलास की ओर मन का होना ही मानो विश्वामित्र का वसिष्ठ के हृदय रूप आश्रम में प्रवेश है। प्रथम उपासक इसका बड़ा आदर करता है। यही दुष्ट मनोरूप विश्वामित्र को नाना भोगों से वसिष्ठ कर्तृक तृप्त करना है॥

महासंग्राम—इस प्रकार जब मन देखता है कि यह मेरे वश में आ गया है किन्तु इसके पास एक बुद्धिरूपा नन्दिनी है जो कभी-कभी रुकावट डालती है, प्रथम इसका ही हरण करना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि जब आदमी भोगविलास में फँसता है तब इसकी बुद्धि प्रथम नष्ट होती है। अतः बुद्धिरूपा नन्दिनी को विश्वामित्र हरण करना चाहता है, परन्तु बहुत दिनों से परिपक्वा वेदों तथा विवेक से सिक्ता बुद्धि शीघ्र नष्ट नहीं होती। दुष्ट मन और विवेकशालिनी बुद्धि में कर्त्तव्याकर्त्तव्य के वास्ते महाभयंकर संग्राम होता है। बुद्धि जीत जाती है। मन भाग जाता है, परन्तु दुष्ट मन कभी निश्चिन्त नहीं होता॥

वसिष्ठ पुत्र शक्ति का नाश—यहाँ देखते हैं कि वसिष्ठ के पास ऐसी नन्दिनी रहने पर भी वह इनकी रक्षा करने में समर्थ नहीं होती। जो नन्दिनी सहस्रों भोज्य पदार्थ उत्पन्न कर क्षणमात्र में विश्वामित्र की सेना को तृप्त कर देती है, जो अनेक प्रकार की सेनाओं को उत्पन्न कर विश्वामित्र की सेनाओं को छिन्न-भिन्न कर भगा देती है, वह अब कहाँ गई जो वसिष्ठ के पुत्र को भी बचा न सकी। इसमें गूढ़ रहस्य यह है कि जब मन उपासक को चंचल बना देता तब वह बुद्धि कुछ काम नहीं कर सकती। प्रथम उपासक के मानसिक, आत्मिक और शारीरिक बलों को वह मन नष्ट कर देता है। अतः लिखा है कि वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को विश्वामित्र ने कल्माषपाद से मरवा दिया। मानसिक

आदि बल ही प्रिय पुत्र हैं। इसी से परम रक्षा होती है। यही वसिष्ठ (जीवात्मा) का परमप्रिय पुत्र शक्ति है, जिसके नष्ट होने से जीवात्मा विविध दु:खों को भोगता है॥

वसिष्ठ की व्यग्रता—जब मन दुष्ट हुआ। बुद्धि नष्ट हुई। शक्ति जाती रही तब मनुष्य क्योंकर पागल न हो। अब वसिष्ठ पागल होकर कभी कालरूप महाग्नि में भस्म होता है, कभी पापरूप महासमुद्र में गिरता है कभी शोक रूप चट्टानों पर गिरकर चूर्ण-चूर्ण होता है अथवा विविध मानसिक दु:खों से पीड़ित होता है। यही वसिष्ठ का अग्नि आदि में भस्म होना आदि है, परन्तु वह कहीं मरता नहीं। इस प्रकार विविध ठोकरों को खाता हुआ जब कभी इसे होश आता है तब वह पुन: चेत जाता है और सब विघ्नों को नाशकर वसिष्ठ का वसिष्ठ बन जाता है, यही वसिष्ठ का पुन: आश्रम में प्रवेश है॥

पराशर की उत्पत्ति—पुन: जब वसिष्ठ आश्रम में लौट कर आता है तो देखता है कि कोई बालक वेद ध्वनि कर रहा है, उससे प्रसन्न हो पुन: स्वस्थ हो जाता है। ठीक है आध्यात्मिक शक्ति का अवश्य कुछ फल मिलता ही है। उस शक्ति की भी शक्ति अदृश्य है। अत: शक्ति की स्त्री का नाम 'अदृश्यन्ती' है, इससे पराशर उत्पन्न होता है 'परान्+शत्रून आक्रणाति अथवा पराशणाति' अर्थात् निखिल विघ्न रूप शत्रुओं को नाश करने वाला विवेक ही यहाँ पराशर है, क्योंकि यह वेद पढ़ रहा है। भाव इसका यह है कि जब पुन: विवेक उत्पन्न होता है तब वेद शास्त्रों में चित्त लगने लगता है तब सब विघ्न स्वयं नष्ट हो जाते हैं॥

कल्माषपाद—जिसके बल पर चलते हैं, वह पैर हैं। कल्माष= विविधवर्ण वा काला। ज्ञान-विज्ञान युक्त धर्म ही मनुष्य का पैर है। जब यह बिगड़ जाता है तब इसकी शक्ति कैसे रह सकती है। अत: लिखा है कि यह प्रथम 'मित्रसह' नाम से प्रसिद्ध था और वसिष्ठ का यजमान भी था। पश्चात् यही राक्षसरूप होकर शक्ति को खा गया। नि:सन्देह धर्म ही आत्मरूप वसिष्ठ का सहायक है, इसी यजमान से आत्मरूप पुरोहित विविध धन पाता रहता है, परन्तु जब आत्मरूप वसिष्ठ इसका निरादर करता है तब नि:सन्देह वह बिगड़ जाता है और आत्मा को भी बिगाड़ना आरम्भ करता है "धर्म एव हतोहन्ति"॥

विश्वामित्र का बारम्बार आक्रमण—भिन्न-भिन्न स्थलों में भिन्न-भिन्न कथा है, ग्रन्थ के विस्तार भय से मैं सबको पृथक्-पृथक् नहीं बतला सकता। महाभारत आदि पर्व में बारम्बार आक्रमण की कथा नहीं है, रामायण में इसका विस्तार से वर्णन है। निःसन्देह दुष्ट मन बारम्बार तपस्वी आत्मा को भी दूषित करना चाहता है, परन्तु जो उपासक परीक्षा में स्थिर रहते हैं वे सदा विजयी होते आए हैं। यही इसका आशय है॥

विश्वामित्र का ब्राह्मण होना—जब यह ब्राह्मण हो जाता है तब पुनः वसिष्ठ के साथ वैर नहीं रखता। ठीक है। जब तक यह मन राजस और तामस भाव में लगा रहता है तब तक आत्मा को दुःख ही देता रहता है। जब यह भी आत्मा के समान सात्त्विक बन जाता है तब दोनों मिलकर जगत् में महान् कल्याण को सिद्ध करते हैं। यही विश्वामित्र का ब्राह्मण होना है। उपनिषदों में आया है तप वा कर्म करने से ये इन्द्रिय, गण मनःसहित देव बनते हैं। अतः यहाँ विश्वामित्र का तपश्चरण के पश्चात् ब्राह्मण होना लिखा है॥

कथा की तुलना—लोग कहेंगे कि यह केवल एक छोटी सी बात है। परस्पर मनःसहित इन्द्रियों और आत्मा के साथ युद्ध का इतना बड़ा वर्णन करना असंगत प्रतीत होता है। इसके उत्तर में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि क्या ऐसे ही घोर युद्ध का वर्णन बुद्धदेव और कामदेव के साथ नहीं है? क्या सचमुच देहधारी कामदेव के साथ बुद्ध का युद्ध हुआ था। क्या यथार्थ में महादेव के ऊपर देहधारी काम ने चढ़ाई की थी, जिसको उन्होंने भस्म कर दिया। क्या सचमुच ईसा को कहीं शैतान ले गये थे और कई दिनों तक उनको दुःख देते रहे। इत्यादि आलङ्कारिक कथा प्राचीन काल में बहुत बनाई जाती थी। इसी वसिष्ठ और विश्वामित्र की कथा का प्रतिरूप बुद्ध के साथ कामदेव का युद्ध है॥

असंगति किस पक्ष में—इतिहास मानने वालों से मैं पूछता हूँ कि क्या किसी समय में ऐसी गौ हो सकती है जो सारी सृष्टि रचने की भी शक्ति रखती हो? क्या विश्वामित्र कोई पागल राजा था कि एक गौ के लिए अपना सम्पूर्ण राज्य देता था, या गौ की ऐसी शक्ति देखकर भी उससे उसको भय नहीं उत्पन्न हुआ कि जिसके ऐसे

सामर्थ्य हैं उसे मैं बलपूर्वक कैसे ले जाऊँगा। पुनः ऐसी गौ के रहते हुए भी वसिष्ठ के पुत्रों की रक्षा क्यों न हुई ? ब्राह्मण होने ही के लिए विश्वामित्र क्यों मरता था ? क्योंकि राजाओं की भी थोड़ी प्रतिष्ठा नहीं थी। क्या यह सम्भव है कि एक क्षत्रिय राजा राक्षस होकर अपने पुरोहित को ही खा जाए ? इत्यादि विषयों पर ध्यान देने से इस कथा का अलंकारित्व सिद्ध होता है ॥

द्वितीय आशय—इसका अन्य आशय इस प्रकार होता है— महाभारत के विषय में यह कहा जाता है कि "भारत व्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः" वेदों के ही अर्थों को नानारूपों में वह वर्णन करता है। मैं भी इस मत से बहुधा सहमत हूँ। महाभारत शब्दों तथा भावों को कुछ परिवर्तन कर वेदार्थ को दर्शाता है। वेद में शुतुद्री। भारत में शतद्रु। वेद में च्यवान। भारत में च्यवन। वेद में दध्यङ्। भारत में दधीचि। इस प्रकार के अनेक उदाहरण पावेंगे। जैसे महाभारत शब्दों को हेर-फेर कर उस-उस का निज अभीष्ठ अर्थ बना लेता है वैसे ही वेदार्थ में भी कुछ बदल कथा रचता है। वेदों में दन्त्य सकार से, भारत में तालव्य शकार से वसिष्ठ लिखा जाता है। व्युत्पत्ति भी इस प्रकार ही प्रायः करते हैं। महाभारत वेदार्थ से बहुत दूर नहीं जाता है, यह भी प्राचीन ग्रन्थों का ही अधिकांश में संग्रहकर्त्ता है। महाभारत दिखलाना चाहता है कि सत्य धर्म के नियमों को भी लोग निरुपद्रव नहीं रहने देते। अब इन विषयों को इस आख्यान में विचार दृष्टि से देखिए ॥

विश्वामित्र शब्द—विश्वामित्र ऐसा नाम क्यों रखा गया। पाणिनि व्याकरण के अनुसार "मित्रे चर्षौ" ऋषि अर्थ में विश्वामित्र बनता है किन्तु यह अभी तक राजा है, राजर्षि भी नहीं। फिर विश्वामित्र इस नाम से यह कैसे पुकारा जा सकता है और वेद में विश्वामित्र एवं वसिष्ठ के वैर की कोई चर्चा नहीं, अतः लोक में यह शब्द कुछ अन्य अर्थ का सूचक है, इसमें सन्देह नहीं। मैं कह चुका हूँ कि सत्य धर्म का नाम वसिष्ठ है। उसको जो नष्ट करना चाहेगा वह अवश्य शत्रु बनेगा, अतः विश्व के अमित्र अर्थ में यह विश्वामित्र शब्द है। अब विश्वामित्र राजा क्यों कहाता इसका भी कारण यह है कि सात्त्विक पुरुष सदा धर्म में स्थिर ही रहते हैं। तामस जन कुछ कर ही नहीं सकते। केवल राजस पुरुष ही हलचल मचाने वाले होते हैं, वे ही

अधिकांश धर्म नियमों का उल्लंघन कर प्रजाओं में उपद्रव करते रहते हैं। अतः यह विश्वामित्र राजा कहाता है। धर्म केवल तप और बुद्धि पर निर्भर है। वही बुद्धि नन्दिनी है। यही कामधेनु है। वह उपद्रवात्मक विश्वामित्र राजा प्रथम जगत् से बुद्धि को नष्ट करना चाहता है, परन्तु वह नष्ट नहीं हो सकती। बुद्धि की ही विजय होती है। पुनः परास्त हो धर्म के सहायकों को अपना सहायक बना प्रथम नियम की शक्ति को नष्ट कर देता है। अतः इस आख्यान में आता है कि जो मित्रसह प्रथम वसिष्ठ का यजमान था वही विश्वामित्र का सहायक बन शक्ति को खा जाता है। जो धर्मरूप मित्र का रक्षक था वह अब भक्षक बन जाता है। जब धर्म की शक्ति नष्ट हो जाती है वह धर्म व्याकुल हो जाता है। धर्म देखता है कि जो मेरे पालक थे, जिनकी सहायता से मैं उत्पन्न हुआ हूँ वह राजवर्ग ही मुझे खाना चाहता है तो इससे अच्छा है मैं मर जाऊँ। यह सोच धर्मरूप वसिष्ठ अग्नि, जल, पर्वत, शस्त्रास्त्र, विष आदि सबके निकट करने को जाता है, परन्तु धर्म की रक्षा जड़ पदार्थ भी करना चाहते हैं, क्योंकि धर्म के नियम पर ही वे चल रहे हैं। अतः अपनी शरण में आए हुए धर्म को अग्नि आदि कोई भी नष्ट नहीं होने देते। अतः सब स्थान से वह धर्म लौट आता है अर्थात् कुछ समय तक राजस पुरुषों के उपद्रव से धर्म अस्त–व्यस्त सा हो जाता है। यही आश्रम छोड़ वसिष्ठ का इधर–उधर चला जाना है। पश्चात् पुनः प्रजाओं में कोलाहल मचता है। उपद्रव शान्त किया जाता है। स्वयं उपद्रवी धर्म बल देख शान्त होकर पश्चात्ताप करके शुद्ध आचरण बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं। इतना ही नहीं किन्तु वे भी सात्त्विक बन जाते हैं। यह केवल धर्म का ही प्रभाव है। राजस पुरुष भी सात्त्विक बन हिंसक प्रवृति से निवृत्त हो जाते हैं। अतः यह उपद्रवात्मक विश्वामित्र ब्राह्मण बनता है। दूसरी ओर प्रजाएँ धर्म को पुनः सींचने लगती हैं। धर्म के कर्म आदि पुत्रों की अदृश्यन्ती शक्ति से पराशर अर्थात् समस्त उपद्रवों का विनाश करने हारा पुत्र जन्म लेता है। उससे पुनः वैदिक मार्ग स्थिर हो जाता है। अतः पराशर के जन्म से वसिष्ठ की शान्ति होती है।

कथा की नित्यता—धर्म नियम का नाम सदा वसिष्ठ होगा, क्योंकि सबके हृदय में अच्छी प्रकार यह वास करता है, इसको सदा मित्र–वरुण अर्थात् ज्ञानी और राजवर्ग मिलकर जन्म दिया करेंगे।

इसके जो विरुद्ध होंगे वे विश्वामित्र और कल्माषपाद आदि नामों से पुकारे जाएँगे। यह सदा क्षत्र वर्गों का ही पुरोहित अर्थात् शासक रहेगा। यह ब्राह्मण नाम से पुकारा जाएगा, क्योंकि अधिकांश यह ज्ञानी वर्ग से उत्पन्न होता है। धर्म की शक्ति देख सदा राजस वर्ग ब्राह्मण होने की चेष्टा करेंगे। इत्यादि नित्य भाव का सूचक यह आख्यायिका है।

तृतीय आशय—प्रथम दो-एक बातें ये हैं। शतपथ के कई स्थलों में लिखा है कि ब्रह्म और क्षत्र वर्ग को मिलकर शासन करना उचित है "ब्रह्म च क्षेत्रं चाग्निरेव ब्रह्म इन्द्रः क्षत्रं तौ सृष्टौः नानैवास्ताम्। तावब्रूतां न वा इत्थंसन्तौ शक्ष्यावः प्रजाः प्रजनयितुम्। एकं रूपमुभावसावैति तावेकं रूपमुभावभवताम्' शतपथ १०।४॥ आशय यह है कि ब्रह्म और क्षत्र दोनों प्रथम पृथक्-पृथक् थे। दोनों ने कहा कि इस प्रकार पृथक्-पृथक् होकर प्रजाओं को बना नहीं सकते, इसलिए आइये दोनों एक रूप हो जाएँ। वे दोनों एक रूप हो गये। शतपथ एकादश काण्ड अध्याय छः में यह भी वर्णन आता है कि जनक महाराज ने कतिपय ब्राह्मणों से अग्निहोत्र के प्रश्न पूछे। उनके समाधान से जनक सन्तुष्ट न हुए इस कारण वे ब्राह्मण बिगड़ कर लड़ने को तैयार हो गये। तब "स होवाच याज्ञवल्क्यो ब्राह्मणा वै वयं स्मौ राजन्यबन्धुरसौ यद्यमुं वयं जयेम क मजैष्मेति ब्रूयाम। अथ अद्यस्मान् जयेद् ब्राह्मणान् राजन्यबन्धु रजैषीरिति नो ब्रूयुः। इत्यादि।" याज्ञवल्क्य ने कहा कि हम सब ब्राह्मण हैं। वह राजन्य बन्धु है। यदि हमने उसे जीत ही लिया तो क्या हुआ, किसको हमने जीता, क्या हम कहेंगे। यदि उससे हमको जीत लिया तो लोक कहेंगे कि देखो राजन्यबन्धु ने ब्राह्मणों को जीत लिया इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्रह्म और क्षत्र वर्ग में परस्पर विरोध होना आरम्भ हो गया था। तीनों वेदों में इन सबकी कोई चर्चा नहीं। हाँ, ब्रह्म क्षत्र को मिलकर व्यवहार करना चाहिए। ऐसा वर्णन यजुर्वेद में आया करता है जिसके उदाहरण प्रारम्भ में ही लिखे गये हैं। यजुर्वेद में यह भी एक बात आती है कि ऐ प्रजाओं! वह राजा जो अभी तुम लोगों की आज्ञा से अभिषिक्त हो रहा है वह तुम लोगों का राजा होता है। हम ब्राह्मणों का राजा केवल सोम अर्थात् परमात्मा है। यथा—विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा। यजु०

९।४०। इस प्रकार समीक्षा करके देखते हैं तो प्रतीत होता है कि ब्रह्म अर्थात् ज्ञानी वर्ग का यथार्थ में कोई राजा नहीं है और होना भी नहीं चाहिए, क्योंकि उनके नियम पर जगत् चल रहा है वे किनके नियम पर चलें। जो सर्वथा ज्ञानपूर्वक धर्म नियम पर चलें-चलावें ,वे ही ब्रह्म या ब्राह्मण हैं। क्षत्र वा क्षत्रिय वे हैं जो अधिकतया बल से काम लेवें। प्रतीत होता है कि अति प्राचीन काल में वे क्षत्रवर्ग ब्रह्मवर्ग को भी अपने वश में करके सुबद्ध करना चाहते थे। जब-जब ऐसी अशुभ इच्छा क्षत्रवर्ग में उत्पन्न होती थी तब-तब इन दोनों में महान् कोलाहल मच जाता था! पुनः शान्ति स्थापना होकर धर्म के प्रबल नियम बनाए जाते थे, परन्तु यह कब सम्भव है कि उद्दण्ड क्षत्रवर्ग उन नियमों का अच्छी प्रकार निर्वहन कर सकें। अतएव ब्राह्मण ग्रन्थों के समय जो इन दोनों वर्गों में वैमनस्य का बीज बोया जा रहा था वह समय पाकर बहुत बढ़ गया।

परशुराम की कथा भी इसी दशा का प्रमाण है। इसी विरोध के चित्र को महाभारत अपने सामने दिखलाता है। ब्राह्मण के निकट कौन सी शक्ति और क्षत्रिय किस शक्ति पर नाचते हैं। ब्राह्मण कैसे उन्नत होते और क्षत्रिय कैसे अपनी दुर्बलता दिखलाते, यह सब वसिष्ठ और विश्वामित्र के जीवन चरित्र से सिद्ध किया गया है। यहाँ एक बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति का युद्ध नहीं, इनकी स्तुति निन्दा नहीं। जिस समय ऐसी-ऐसी कथा बनाई गई उस समय जाति विभाग नहीं था। यदि जाति विभाग होता तो ऐसी कथा कभी देश में प्रचलित नहीं होती। कोई भी क्षत्रिय उसको नहीं सुनता, अतः यहाँ ब्रह्म वा ब्राह्मण पद से विवेकी, ज्ञानी, तपस्वी, ऋषि अर्थ और क्षत्र वा क्षत्रिय पद से शासक बलात्कार कारी परमबलिष्ठ आदि ग्रहण करना चाहिए। अन्त में यजुर्वेद के मन्त्र को पुनः स्मरण दिला इस प्रकरण को यहाँ ही समाप्त करता हूँ।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥

—यजु २०।२५

जिज्ञासाऽध्याय १

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः। —मुण्डकोपनिषद्

ज्ञातुमिच्छा जिज्ञासा। जानने की प्रबल इच्छा का नाम जिज्ञासा है। विज्ञान, अन्वेषण, खोज, तहकीकात (Research) इत्यादि अर्थों में यहाँ जिज्ञासा शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रत्येक नर-नारी के हृदय में जिज्ञासा का बीज स्वभावत: विद्यमान है। इसी हेतु पश्वादिकों की अपेक्षा मानव जाति की उत्तरोत्तर वृद्धि, सृष्टि की आदि से होती चली आती है। जब बालक उत्पन्न होता है, यद्यपि उसकी इन्द्रिय-शक्ति बहुत स्वल्प रहती है। देखना, सुनना, सूँघना, रस लेना, हिताहित विचार आदि व्यवहार में और 'अग्नि', सर्पादिकों के ज्ञान में इसका इन्द्रियगण अति दुर्बल रहता है। तथापि वह सूतिकागृह की शय्या पर सोते-सोते अपनी चारों ओर आँख फार-फार देखता, हाथ-पैर मारता, अनेक प्रकार की चेष्टा करता ही रहता है। ज्यों ही बढ़ता और बोलने लगता है। तब देखो कितनी इसमें जिज्ञासा की शक्ति बढ़ती जाती है। नवीन वस्तु को देखते ही झट पूछता है माँ! यह क्या है? कभी छोटे बच्चे को लेकर कहीं बाह्य स्थान में निकलो। प्रत्येक नई वस्तु को देख-देख कर वह शिशु इतने प्रश्न पूछता जाएगा कि उत्तर देने वाले की नाक में दम आ जाएगा। इस प्रकार वह थोड़े ही वर्षों में अपने परित: स्थित वस्तुओं को बाह्य रूप से जानकर ही छोड़ता है। अति मूर्ख जाति में वह जिज्ञासा यहाँ ही तक रह जाती है। सभ्य जाति में अध्ययन और मननादि के द्वारा वह नाना-शाखावलम्बिनी होती चली जाती है। मध्यम कोटि की मानव जाति में इसकी परम दुर्दशा होने लगती है। जिज्ञासा का स्थान साम्प्रदायिक मज़हबी (Religions) विश्वास ले लेता है। मूर्ख नर-नारी इसके परम बैरी हैं। धूर्तजनों के भोज्य ये ही होते चले आए हैं। ऐ मेरे श्रोताओ! ये वंचक, वकवृत्ति, वैडालव्रतिक जन ही व्याघ्र हैं। मनुष्यजातिरूपा अरण्यानी में प्रवेश कर अविवेकी-अमन्ता-अबोद्धा-विश्वासी पुरुष रूप मृग शशकादि

को पकड़-पकड़ खूब चबाते हैं। वे पशु, मृग, शशक तो अपने शत्रु को झट पहचान भी लेते हैं और उनसे डर के भाग भी जाते हैं। कदाचिदेव विवश होकर उन्हें कवलित होना पड़ता है। किन्तु शोक की बात है कि इस,मानव जाति के १००भागों में से निन्यानवे भाग इतने विचार शून्य हैं कि वे साम्प्रदायिक विश्वासी बन के अपनी विवेक रूप आँखें ऐसी चूर्ण-चूर्ण करवा लेते हैं कि वे अपने प्रिय हाथ को भी नहीं देखते इस कौतुक में महान् आश्चर्य यह है कि अन्ध अपने को चक्षुष्मान्, बधिर अपने को श्रोता, मूक अपने को वाचाल, पंगु अपने को धावक और अज्ञानी अपने को परमज्ञानी अपने को परमज्ञानी मानने लगता है। बहुत क्या कहूँ वे विश्वासी बिहग सर्वथा अविद्या रूपी पिंजरे में बन्द कर दिये जाते हैं। उनको धूर्तजन शुकवत् पढ़ाने लगते हैं कि देखो? यह तुझे परम गुप्त मन्त्र देता हूँ किसी से मत कहना। देख! दूसरे को कह देने से मन्त्र का प्रभाव जाता रहता है। **नात्र कार्य्या विचारणा। गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः। एषा शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिवः।** देखो? यह श्री व्यास जी का वचन है। यह साक्षात् श्रीभगवान् जी का वाक्य है। यह पार्वती जी की वाणी है। इसमें कभी दुर्भाव न करना। तेरा कुल नष्ट हो जाएगा। तू मर जाएगा। तेरी सन्तति न रहेगी। इत्यादि अनेक शापाभिशाप दे के विश्वासी जनों को ठगा करते हैं। ऐ मेरे प्यारे श्रोताओ! क्या इस अज्ञान से तुम बचना नहीं चाहते? किसी ने ठीक कहा है कि 'धूर्तैर्जगद् वञ्चितम्'' इस दृश्य को याज्ञवल्क्य ने अन्य प्रकार से दिखलाया है; यथा—

अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरेवं स देवानां यथा ह वै बहवः पशवो मनुष्यं भुञ्ज्युरेवमेकैकः पुरुषो देवान् भुनक्ति। एकस्मिन्नेव पशावादीप-मानेऽप्रियं भवति किमु बहुषु तस्मादेषां तन्नप्रियं यदे तन्मनुष्या विद्युः।

अर्थ—मैं अन्य हूँ, वह अन्य है, ऐसा समझ जो कोई अन्य देवता की उपासना करता है वह नहीं जानता। जैसा पशु है वैसा ही वह देवता का पशु है। जैसे बहुत से पशु मनुष्य पालते हैं वैसे ही एक-एक पुरुष देवों को पालता है। यदि किसी एक ही पशु को कोई चुरा

ले जाए या व्याघ्र मार के खा जाए तो उसको कितना दु:ख होगा। यदि इसी प्रकार उसके अनेक पशु चुराए जाएँ तो कहिये उसको कितना असह्य क्लेश होगा। अत: देवता इसको अच्छा नहीं समझते हैं कि मनुष्य जान जावें, क्योंकि जानकार होने से वह भी देव या देव से भी अधिक हो जाता है। तब वह ऐसे स्वार्थी देव की सेवा नहीं करता, अत: देव नहीं चाहते कि मनुष्य ज्ञानी बने। आजकल इस आर्यावर्त देश में याज्ञवल्क्य जी का वचन ठीक चरितार्थ हो रहा है। अविवेकी सम्प्रदायी विश्वासी जन ही यहाँ पशु हैं। वंचक स्वार्थान्ध गुरु जी देव हैं। वे अज्ञानी अपने को नीच-पापिष्ठ मान अपने वंचक गुरु को ईश्वरावतार, धर्ममूर्ति, निष्कलंक, परमशुद्ध पुरुषोत्तम, साक्षात् भगवान जान उन्हें विधिपूर्वक पूजते हैं, पैर धोते हैं, पैर धो पानी को चरणामृत समझ देह पर सींचते और पीते। उनके चरणों पर प्रेम से फूल चढ़ाते। मोती, सोने, चाँदी, रुपये, पैसे भेंट देते हैं। फलों, फूलों, अन्नों तथा अन्यान्य शतश: पदार्थों से उनके गृह भर देते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु स्त्रियाँ तक भी तन, मन, धन गुसाईं जी को अर्पण करती हैं। ऐसे नरपशु उन-उन गुरुदवों को पाल-पाल कर ऐसे-ऐसे हृष्ट-पुष्ट सांड बना देते हैं कि वे मदोन्मत्त होकर यथेच्छ आहार-विहार भोगविलास को ही परमानन्द समझ उद्दण्ड नास्तिक बन सर्वमानव हितकारी नियमरूप शृंखलाओं को तोड़ डालते हैं। वे गुरुदेव जब-जब अपने नरपशु को देखते हैं कि यह कुछ जानने लगा है। यह किसी विवेकी प्रकाश के निकट जाता है तो उन्हें बड़ा ही क्लेश होता है। सोचने लगते हैं कि कहीं ऐसा न हो कि यह मेरा पशु चला जाए। ऐ विवेकी पुरुषो! देखो, श्री याज्ञवल्क्य जी क्या कह रहे हैं? देवता नहीं चाहते हैं कि मेरे पशु ज्ञानी हो जाएँ। मैं निश्चय कहता हूँ कि वे सम्प्रदायी गुरुदेव तुमको कभी विवेकी होने नहीं देवेंगे। अत: प्रथम यदि इनकी हथकड़ी से छूटने का यत्न करोगे तब कहीं जिज्ञासा के अधिकारी बनोगे। मैं तुमसे कहता हूँ कि कभी जिज्ञासा से मुख मत मोड़ो। जिज्ञासा के लिए ही मानव जाति बनाई गई है। इन परित: स्थित पदार्थों को देख-देख कर जिनके हृदय में उनके विशेष बोधार्थ प्रश्न नहीं उठते हैं, वे निश्चय पशु हैं। वे दुर्बल हृदय के पुरुष हैं जिनके हृदय में प्रश्न तो उठते हैं, किन्तु किसी खास मज़हब में वा धर्म सभा

में रहने के कारण उन प्रश्नों को विचार में नहीं लाते, प्रकट नहीं करते। बहुत से ऐसे भी हैं जो जानते हुए भी अनजान हैं। वे अपनी-अपनी जाति, परिवार, मजहब, वा किसी लोभ, मोह, भय आदि कारणवश सत्य को प्रकाशित नहीं कर सकते। वैसे पुरुष परम शोचनीय हैं अहा!!! मनुष्य किस प्रकार गुलाम बनाया गया है।

ऐ मेरे परमप्रियो! जो अपने को नीच समझता है वा अपने कर्म से आत्मा को दीन दरिद्र बनाता है, वह अवश्य नीच हो जाता है। तुम्हारे शरीर में जो आत्मा है, वह महान् है, वह ज्ञान का राशि है, वह अगाध है। गीता में कहा गया है, कोई आत्मा को न गिरावे। "उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैवह्यात्मनोबन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।" गी० ६।५। अतएव ऋषिगण प्रार्थना करते चले आए हैं 'अदीनाः स्याम शरदः शतम्' प्रथम आपको यह जिज्ञासा करनी चाहिए कि यह गुरुदेव मुझसे किस बात में श्रेष्ठ हैं। मेरे ही समान, खाते, स्त्री रखते, पुत्र जनमाते। फिर वे कैसे देव! वे कैसे मनुष्य! प्रथम तो यह सोचो। अच्छी प्रकार विचारो। यदि उनमें कोई विशेष गुण है तो उनके आदर करने में कोई क्षति नहीं। योग्य आदर करो। अति मत करो। यथार्थ में तुम्हारे गुरु आचार्य तो वे हैं जिन्होंने तुम्हें पढ़ाया। जो सदा सदुपदेश देते हैं और स्वयं भी उसके अनुसार चलते हैं। दूसरों के उपदेश देने वाले तो बहुत हैं किन्तु उसके अनुसार स्वयं चलने वाले बहुत थोड़े हैं।

कृतकृत्यता—जो अपने को कृतकृत्य समझते हैं वे भी जिज्ञासा के परम बाधक हैं, क्योंकि वे खोज से निवृत्त हो जाते हैं। परन्तु मैं कहता हूँ, मरण की घड़ी तक तुम अभीष्ट पदार्थों का अन्वेषण करते रहो। मनुष्य जाति को सुशोभित करने वाला केवल अन्वेषण है। जिज्ञासु ही सचमुच मनुष्य है। बहुत कहते हैं कि यदि जन्मभर खोजते ही रहें तो परमार्थ की प्राप्ति कब करें। उत्तर—तुमने परमार्थ को क्या समझा है? क्या ईश्वर की विभूति का खोज करना परमार्थ नहीं है? तुम पहले ही कृतकृत्य कैसे हो सकते? क्या तुमने परमात्मा की सारी विभूतियों की इयत्ता पाली? यह कभी नहीं हो सकता। मनुष्य सर्वदा स्वल्पज्ञ ही रहेगा। परमात्मा परम पिता की सृष्टि का कदापि भी अन्त तक यह जीवात्मा किसी अवस्था में नहीं पहुँच सकता, अतः जहाँ

तक अपने जीवन में जितना ढूँढ़ निकालोगे वह तुम्हारे लिए परमार्थ है, वह परमानन्दप्रद होगा। मैं कहता हूँ कि तुम कभी अपने को कृतकृत्य मत समझो। सर्वदा जिज्ञासु ही बने रहो।

जो कोई यह कहते हैं कि बहुत ग्रन्थों के देखने से क्या? बहुत बकने से क्या? जब 'अहं ब्रह्मास्मि' का ज्ञान हो गया तो इससे परे क्या है। एक ही राम नाम काफी है। एक बार गंगा पर्याप्त है। एक बार एक आध श्लोक पढ़ लेना ही मुक्ति का कारण है। जगत् में तीन ही वस्तु हैं—परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। सो अच्छी प्रकार जाने गये। मैंने एक यज्ञ कर लिया, परम पवित्र हो गया, अब क्या करना है, इत्यादि नाना अविद्याओं में फँस अज्ञानी अपने को तृप्त मानने लगते हैं। इनके ही लिए ऋषि अंगिरा कहते हैं—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः।
जङ्घन्यमाना परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ ८ ॥
अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः।
यत्कर्मिणो न प्रभेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते।

नारद की जिज्ञासा

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्। तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः। यदा किंचित् किंचिद् बुधजन सकाशादवगतम्। तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः।

नारद की जिज्ञासा—छान्दोग्योपनिषद् सप्तम प्रपाठक में यह आख्यायिका आई है। एक समय नारद सनत्कुमार के सिन्निधि जा बोले कि भगवन्! मुझे आप उपदेश देवें। सनत्कुमार ने कहा कि आप जितना जानते हैं उतना प्रथम कह जाइये। तब मैं उसके आगे कहूँगा॥ १॥

नारद बोले—मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ अथर्वण, पञ्चम इतिहास पुराण, वेदों का वेद (व्याकरण) पित्र्य, राशि, दैव, निधि, वाकोवाक्य, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्र विद्या, सर्पदेव, यजन विद्या—ये १८ अष्टादश विद्याएँ जानता हूँ॥ २॥

हे भगवन्! सो मैं अभी तक मन्त्रवित् ही हूँ। आत्मवित् नहीं।

आप लोगों के समान पुरुषों से सुनता हूँ कि आत्मवित् शोक को तैर जाता है। मैं शोक कर रहा हूँ अतः मैं आत्मवित् नहीं, मझे शोक से पार उतारें॥ ३॥ इसके पश्चात् सनत्कुमार ने कहा कि हे नारद! ये ऋग्वेदादि नाम ही हैं। नाम की जहाँ तक गति है वहाँ तक उसकी गति होती है, जो नाम ब्रह्म की[१] उपासना करता है। आगे नारद और सनत्कुमार में मनोज्ञ सुंदर संवाद है।

१ वाणी, २ मन, ३ संकल्प, ४ चित्त, ५ ध्यान, ६ विज्ञान, ७ बल, ८ अन्न, ९ जल, १० तेज, ११ आकाश, १२ अस्मरण, १३ आशा, १४ प्राण—ये चौदह उत्तरोत्तर अधिक माने गये हैं। इसके पश्चात् कहा है कि सत्य ही सबसे अधिक है।

नारद ने कहा कि—"सत्यं भगवो विजिज्ञासे इति।"

हे भगवन्! मैं सत्य की विशेष रूप से जिज्ञासा करता हूँ।

सनत्कुमार—जब जानता है तब सत्य बोलता है। बिना जाने सत्य नहीं बोलता। जानता हुआ ही सत्य बोलता है, अतः हे नारद! विज्ञान ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—विज्ञानं भगवो विजिज्ञासे। इति। भगवन्! मैं विज्ञान की विशेष रूप से जिज्ञासा करता हूँ।

सनत्कुमार—जब मनन करता है तब जानता है। बिना मनन किए नहीं जानता है, मनन ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—मतिं भगवो विजिज्ञासे। इति। मति=मनन

सनत्कुमार—जब श्रद्धा करता है तब ही मनन करता है। अश्रद्धालु मनन नहीं करता। श्रद्धावान् ही मनन करता है।

हे नारद! श्रद्धा ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—श्रद्धां भगवो विजिज्ञासे। इति।

सनत्कुमार—जब निष्ठावान होता है तब श्रद्धा करता है, अनिष्ठ श्रद्धा नहीं करता। नैष्ठिक ही श्रद्धा करता है। हे नारद! निष्ठा ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—निष्ठां भगवो विजिज्ञासे। इति।

---

१. उपनिषदों में ब्रह्म शब्द वृहत्, परमादरणीय, प्रीतिभाजक इत्यादि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

सनत्कुमार—जब किसी वस्तु को क्रिया में लाकर देखता है तब ही निष्ठा होती है। अकर्मी कभी निष्ठावान् नहीं होता। हे नारद! कृति ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—कृतिं भगवो विजिज्ञासे। इति।

सनत्कुमार—जब सुख पाता है तब कर्म करता है। सुख को न पाकर कोई कर्म नहीं करता। सुख को पाकर ही कर्म करता है। सुख ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—सुखं भगवो विजिज्ञासे। इति।

सनत्कुमार—जो भूमा अर्थात् परम महान् है, वही सुख है। अल्प में सुख नहीं। भूमा ही सुख है। भूमा ही विजिज्ञासितव्य है।

नारद—भूमानं भगवो विजिज्ञासे। इति।

इसके पश्चात् सनत्कुमार ने उपदेश दिया है कि सर्वव्यापी परमात्मा ही भूमा है। वही सुखस्वरूप है।

नारद—वह परमात्मा है कहाँ?

सनत्कुमार—अपनी महिमा में।

अर्थात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, मनुष्य, पशु आदि उसकी महिमा है। इसी में प्रतिष्ठित है। इत्यादि नारद और सनत्कुमार का संवाद है। ऐ जिज्ञासु पुरुषो! प्रथम तुम देखते हो कि नारदजी कितनी विद्याएँ जानते थे। तो भी इन्हें सन्तोष नहीं। ये पुनः गुरु के समीप जाते हैं और इनसे परमार्थ के उपदेश ग्रहण करते हैं। क्या तुमने नारद से भी अधिक जान लिये जो जिज्ञासु बनने में संकोच करते हो। यदि तुममें से दो-एक सनत्कुमार बन गये हैं तो भी क्या क्षति तो भी सन्तुष्ट न होना चाहिए। वे सनत्कुमार भी तो सदा मनन में ही लगे रहते थे।[१]

---

१. यद्यपि, इन महात्माओं का इतिवृत्त यथार्थ रूप में नहीं पाया जाता। पुराणों ने इसके विषय में अनेक गल्प कल्पित किए हैं। पुराणों के अनुसार, ये ब्रह्मा के पुत्र कहे गये हैं। सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये चार भाई माने जाते हैं। यह ध्यान रखना चाहिये कि जितने अच्छे साधु महात्मा हुए वे सब ही प्रायः विरंची के साक्षात् तनय कहे गये है। पुराणों की ऐसी कल्पनाएँ त्याज्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये सनत्कुमार कोई अनुभवी मननशील हुए हैं। किसी नवीन विद्या के बड़े भारी आविष्कर्त्ता थे। धीरे-

विराट् और वैश्वानर रूप—सनत्कुमार कहते हैं कि यह ब्रह्म अपनी महिमा में प्रतिष्ठित है। सूर्य से लेकर तृणपर्यन्त ब्रह्म की महिमा है। अतः सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी प्रभृतियों में से जितना भाग जो जानेगा वह मानों उतना ब्रह्म की महिमा को ही जानेगा, पुनः विराट् रूप में वर्णन आता है कि मानो, ब्रह्म का चरण यह वसुन्धरा है, नयन दिनमणि, श्रुति दिशाएँ, घ्राण वायु है, आस्य अग्नि है, महाकाश उदर है। इत्यादि—

छान्दोग्योपनिषद् पञ्चम प्रपाठक, एकादश खण्ड से एक आख्यायिका आरम्भ होती है कि, प्राचीनशाल औपमन्यब, सत्ययज्ञ पौलुषि,इन्द्रद्युम्न भाल्लदेय, जन शार्कराक्ष्य और बुडिल आश्वतराश्वि ये सब महाशाल (बड़ी पाठशाला वाले) और महा श्रोत्रिय थे। मिलकर विचारने लगे कि "**कोनु आत्मा किं ब्रह्मेति**" आत्मा और ब्रह्म क्या वस्तु है। निश्चय न कर सके। तब उस समय के सुप्रसिद्ध उद्दालक आरुणि ऋषि के निकट आए। ये भी उनके सन्देहों को मिटाने में अपने को असमर्थ देख उन्हें साथ ले केकैय अश्वपति के निकट पहुँचे। राजा अश्वपति उनकी यथाविधि पूजा करवा कहने लगे—हे परमपूज्यो! मेरे जनपद में १स्तेन २कदर्य ३मद्यप ४अनाहिताग्नि और ५अविद्वान् नहीं हैं और षष्ठ स्वैरी (व्यभिचारी) नहीं है तो स्वैरिणी (व्यभिचारिणी कुट्टिनी) कहाँ से होंगी। हे पूज्यो! मैं यज्ञ करने वाला हूँ, आप यहाँ निवास करो। एक–एक ऋत्त्विज को जितना दूँगा उतना आप को भी दूँगा। राजा के इस वचन को सुन वे सब बोले कि पुरुष जिस प्रयोजन के लिए आवे वही उसे देना उचित है। आप इस समय वैश्वानर आत्मा को जानते हैं। वही हमको देवें। राजा ने कहा कि मैं प्रातःकाल कहूँगा वे सब भी समित्पाणि हो पूर्वाह्ण में राजा के समीप पहुँचे। महाराज ने यथोचित रूप से वैश्वानर आत्मा के विषय में उपदेश दिया

धीरे ये परमसिद्ध सदा एक ही रूप में विद्यमान मान लिए गये। इनमें से तीन भाइयों के नाम अभी तक तर्पण की पद्धति में आते हैं और मनुष्य मानकर इनका तर्पण होता है; यथा—

मनुष्यांस्तर्पयेद्भक्त्या ऋषिपुत्रानृषींस्तथा सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः॥ कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पंचशिखस्तथा। सर्वेते तृप्तिमायान्तु मद्दत्ते नाम्बुना सदा इत्यादि।

है। मैं यहाँ अतिसंक्षेप से उस सम्वाद को दिखलाता हूँ।

अश्वपति—हे औपमन्यव! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं?

औपमन्यव—राजन्! मैं द्युलोक की ही उपासना करता हूँ।

अश्वपति—यह आत्मा का तो मूर्धामात्र है।

हे सत्ययज्ञ! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं?

सत्ययज्ञ—राजन्! मैं आदित्य की उपासना करता हूँ।

अश्वपति—यह आत्मा का तो चक्षुमात्र है।

हे इन्द्रद्युम्न—आप किस आत्मा की उपासना करते हैं?

इन्द्रद्युम्न—राजन्! मैं वायु की ही उपासना करता हूँ।

अश्वपति—यह आत्मा का तो प्राणमात्र है।

हे राजन्! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं?

जन—राजन्! मैं आकाश की उपासना करता हूँ।

अश्वपति—यह आत्मा का तो मध्य देह मात्र है।

हे बुडिल! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं?

बुडिल—राजन्! मैं जल की ही उपासना करता हूँ।

अश्वपति—यह आत्मा का तो वस्तिमात्र है।

हे उद्दालक! आप किस आत्मा की उपासना करते हैं?

उद्दालक—राजन्! मैं पृथिवी की उपासना करता हूँ।

अश्वपति—यह आत्मा का चरणमात्र है।

राजा ने इस प्रकार उनकी उपासनाओं का खण्डन करके कहा कि आप सब अभी तक एक-एक अवयव मात्र की उपासना में तत्पर हैं, यह उचित नहीं। द्युलोक से लेकर पृथिवी तक एक ही वैश्वानर है। हाँ, एक-एक अवयव की उपासना से भी आप कल्याण भागी हैं। यदि सम्पूर्ण वैश्वानर को जानें तो बहुत फल पावेंगे। राजा के उपदेश का मुख्य तात्पर्य यह है कि प्रथम ऐ महाश्रोत्रियो! इस अपने शरीर को ही वैश्वानर समझिये। इस देह में शिर द्युलोक, नयन आदित्य, प्राण वायु, मध्यदेह आकाश, मूत्रस्थान जल और पैर पृथिवी है। छाती ही वेदि है। लोभ ही कुश है। हृदय ही गार्हपत्य अग्नि है। मन ही

अन्वाहार्यपचन अग्नि है। मुख ही आहवनीय अग्नि है। ऐ श्रोत्रियो! प्रथम इसके महत्त्व को जानिये पश्चात् बाह्य जगत की गवेषणा कीजिए तब ही पूर्ण कल्याण भागी होवें। नि:सन्देह जो कोई अपने आत्मा के महत्व को नहीं जानता है वही वास्तव में अधम है। इसके पश्चात् इस पृथिवी पर के पदार्थों का अच्छी प्रकार अध्ययन करे।

शोक की बात है कि अज्ञानी जन स्वर्ग की बड़ी-बड़ी लम्बी-लम्बी बातें करेंगे, परन्तु जिस पृथिवी पर वे रहते हैं वहाँ की सच्ची-सच्ची बात जानने के लिए उद्योग न करेंगे। ये पृथिवी, हिमालय पर्वत, समुद्र, वनस्पति, पशु, पक्षी आदि सहस्रों पदार्थों को वास्तव में नहीं जानते। ऐ मनुष्यों! प्रथम पैर का ही बोध उत्पन्न करो, धीरे-धीरे आकाशस्थ मेघ, वायु, विद्युत, प्रकाश, चन्द्र, सूर्य आदि पदार्थों के तत्व सीखो। जब समूह के विज्ञान में गवेषण करोगे तब तुम ब्रह्म की विभूति के अति क्षुद्र अधिकारी माने जाओगे।

इस आख्यायिका से सिद्ध है कि इस अनन्त ब्रह्माण्ड महाविराट् रूप में से जो जितना जानेगा वह मानो उतना ब्रह्म के ही रूप को जानेगा। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का बोध कदापि नहीं हो सकता। सूर्य से लेकर पृथिवी तक प्रथम जानने का प्रयत्न करें। पुन: ऐसे-ऐसे सूर्य सहस्रश:, पृथिवी सहस्रश: हैं जहाँ तक हो उन्हें भी जानें। यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि उपासना शब्द का अर्थ अध्ययन है। जब ऐसे-ऐसे महाशाल महाश्रोत्रिय आपके पूर्वज एक-एक पदार्थ के विज्ञान में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देते थे, फिर भी सन्तुष्ट न होकर पुन: जिज्ञासा किया करते थे, तब क्या आप इस परमोद्योग से सदा के लिए वंचित ही रहेंगे! आपने अभी क्या जाना। अत: सदा जिज्ञासु बनो!

वेदान्त के कर्त्ता बादरायण मीमांसा कर्त्ता जैमिनि ये दोनों "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। अथातो धर्म जिज्ञासा।" ऐसा प्रतिज्ञासूत्र लिखते हैं वे यह नहीं कहते हैं कि हम ब्रह्म और धर्म को जानते हैं। वे ब्रह्म और धर्म की जिज्ञासा में कितने दिन लगे रहे होंगे और कितने दिनों के मनन के पश्चात् ग्रन्थ लिखकर तैयार किए होंगे। अत: हे भारतवासियो! अपने पूर्वजों के महान् कार्य पर दृष्टि डालो और जिज्ञासु बनो।

वैदिक ज्ञान

स्वयं आम्नाय (वेद) जिज्ञासा की ओर मनुष्य को भूयोभूय: ले

जाते हैं। मनुष्य की प्रतिभा तीक्ष्ण हो, सूक्ष्माति सूक्ष्म वस्तु में इसकी अप्रतिहत गति हो और आत्मचेष्टा की परम काष्ठा तक पहुँचे। इस कारण श्रुतियाँ परमहितकारिणी हो कर मनुष्य को इस गवेषणा की ओर ले जाती हैं।

एक स्थान में वेद कहते हैं कि वह विश्वकर्मा परमात्मा किस आधार पर खड़ा होकर और किस आरम्भिक पदार्थ से इस जगत् को बनाता है। यथा—

१—किंस्विदासीधिष्ठानमांरम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत्। यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यांमौर्णोन् महिना विश्वचक्षाः॥

—ऋ० १०।८१।२

जैसे लोक में देखा जाता है कि कुम्भकार किसी स्थान पर बैठ मृत्तिका ले चाक के ऊपर यथाभिमत घट और बिहगादि की मूर्तियाँ बनाया करता है वैसे ही क्या ईश्वर भी आसन लगा, जगत बनाने की सामग्री ले सूर्य-चन्द्र-पृथिवी प्रभृति अनन्त सृष्टि रचा करता है? इसी विषय को प्रश्न और उत्तर रूप से कहते हैं—(स्वित्) वितर्क अर्थात् इस ऋचा के द्रष्टा ऋषि वितर्क करते हैं कि (अधिष्ठानम्+किम्+आसीत्) पृथिवी से लेकर द्युलोक तक सृजन कहते हुए परमात्मा का बैठने का स्थान कौन था? क्योंकि लोक में निरधिष्ठान होकर कोई भी कुछ नहीं करता, अतः ईश्वर का भी कोई अधिष्ठान होना उचित है सो वह स्थान कौन है? जहाँ बैठ के जगत् रचता है। (स्वित्+आरम्भणम्+कतमत्+आसीत्) पुनः वितर्क करते हैं कि आरम्भ करने की सामग्री क्या थी? (कया) क्रिया भी किस प्रकार की थी अर्थात् निमित्त कारण कैसा था, यतः जिस काल में (भूमिम् द्याम्) भूमि और द्युलोक को बनाता हुआ (विश्वकर्मा) सकल सृष्टि कर्त्ता (विश्वचक्षाः) सर्वद्रष्टा परमात्मा (महिम्ना) अपनी महिमा से (द्याम+भूमिम्) द्युलोक और भूमि को (वि) विशेष रूप से (और्णोत्) आच्छाति अर्थात् बना रहा था, उस समय उसकी बैठक और सामग्री कौन सी थी? विश्वकर्मा=विश्वकर्त्ता=सबके बनाने वाला। विश्वचक्षा=विश्व=सब। चक्षा=देखने वाला। और्णोत्=ऊर्णुञ आच्छादने।

वहाँ ही पुनः कहते हैं कि वह कौन सा वन और वृक्ष है जिसको काट कर यह संसाररूप भवन बनाता है? हे मनीषी पुरुषो! यह भी

विश्वकर्मा से पूछो कि वह इन समस्त भवनों को पकड़े हुए किस पर खड़ा है। यथा—

२— किंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आसयतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन्॥

—ऋ० १०।८१।४

(स्वित्) द्रष्टा ऋषि इस ऋचा के द्वारा वितर्क करते हैं, (किम्+वनम्) वह कौन वन है? (कः+उ+सः+वृक्षः) वह कौन वृक्ष है? (यतः+ द्यावापृथिवी) जिस वन और वृक्ष से विश्वकर्मा ने द्युलोक और पृथिवी को (निष्टतक्षुः) काटकर अलंकृत किया है। (मनीषिणः) हे मनीषी विद्वानो! (मनसा+तत्+इत्+उ) मन में पर्यालोचना करके उनको भी (पृच्छत्) पूछिये। (भुवनानि+धारयन्) सम्पूर्ण भुवनों को पकड़े हुए वह विश्वकर्मा (यद्+अधि+अतिष्ठत्) जिसके ऊपर खड़ा रहता है अर्थात् इस जगत को पकड़ कर वह किस आधार पर खड़ा रहता है। हे विद्वानो! इस बात को भी तो कभी पूछो॥

तीसरी जगह कहते हैं कि आश्चर्य की बात है इसको कौन जानता है, कौन कह सकता है कि ये विविध सृष्टियाँ कहाँ से आईं? सब ही पीछे उत्पन्न हुए हैं। इसका कारण कौन जानता है कि वह सृष्टि कहाँ से आई? यथा—

३—को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वागदेवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥

—ऋ० १०।१२९।६

(कः+अद्धा+वेद) कौन इसको निश्चय रूप से जानता है? (कः+ इह+प्र+वोचत्) कौन यहाँ इसका व्याख्यान कर सकता है? (कुतः+ आजाता) यह सृष्टि कहाँ से आ गई? (कुतः+इयम्+विसृष्टिः) कहाँ से यह विविध प्रकार की सृष्टियाँ बनीं? (देवाः) विद्वद्गण वा सूर्यादि देव सब ही (अस्य+विसर्जनेन+अर्वाग्) इस सृष्टि के बनने के पश्चात् हुए हैं। (अथ+कः+वेद+यतः+आ+बभूव) तब कौन जानता है कि यह सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई है?

सूर्य को अस्त होते देख कहते हैं कि यह सूर्य कहाँ चला जाता है। इसकी किरण अब किस लोक को प्रकाशित करती होंगी; यथा—

४—क्वेदानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यांरश्मिरस्याततान ॥

—ऋ० १ । ३५ । ७

अब सूर्य कहाँ है ? इसको कौन जानता है ? किस द्युलोक में इसकी किरण अब फैल रही हैं ।

यह गौ कृष्णा है, किन्तु इसका दूध श्वेत क्यों ? यथा—

५—सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु ॥

—ऋ० १ । ६२ । ९

(स्वपस्यमानः) सुन्दर कर्म करता हुआ (सुदंसाः) और सदा शोभन कर्म करने वाला (शवसा+सूनुः) बल का पुत्र जो यह इन्द्र= जीवात्मा है (सनेमि+सख्यम्) वह प्राचीन मित्रता (दाधार) रखता है। हे इन्द्र! आप (आमासु+चित्) अपरिपक्व गौवों के (अन्तः) भीतर (पक्वम्+ दधिषे) परिपक्व दूध को स्थापित करते हैं। (कृष्णासु) काली और (रोहिणीषु) लाल गौवों में तद्विरुद्ध (रुशद्+पयः) देदीप्यमान श्वेत दूध बनाते हैं।

यह पृथिवी और यह द्युलोक है। इन दोनों में कौन ऊपर और कौन नीचे, इस प्रकार के कोई ऋषि वेद द्वारा प्रश्न करते हैं; यथा—

६—कतरा पूर्वः कतरा परायोः कथा जाते कवयः कोवेद।

(आयोः) इस पृथिवी और द्युलोक में से (कतरा+पूर्वा) कौन पहली या ऊपर है (कतरा+परा) और कौन पिछली या नीचे है ? (कथा+जाते) वे दोनों कैसे उत्पन्न हुए ? (कवयः+कः+वेद) हे कविगण! इसको कौन जानता है ?

कोई ऋषि पूछते हैं कि जो नक्षत्र बहुत ऊँचे रात्रि में दीखते हैं, वे दिन में कहाँ चले जाते हैं। यथा—

७— अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा
नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ॥ —ऋ० १ । २४ । १०

(अमी) ये (ये) जो (ऋक्षा) नक्षत्रगण (उच्चा:निहितासः) ऊँचे स्थापित (नक्तन्+ददृश्रे) रात्रि में दीखते हैं, (दिवा) दिन में (कुह+ चित्+ईयुः) कहाँ चले जाते हैं ?

वे स्त्रियाँ हैं किन्तु उन्हें पुरुष कहते हैं, आँख वाला देखता है,

अन्धा नहीं देखता। जो पुत्र विद्वान् है वह इसको जानता है। जो उनको जानता है, वह पिता होता है। यथा—

८—स्त्रियः सतीस्तां उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान् वि चेतदन्धः। कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् सपितुष्पितासत्॥

—ऋ० १। १६४। १६।

(सतीः स्त्रियः) जो उत्तम स्त्रियाँ हैं अर्थात् सर्वत्र विस्तृत होकर लोगों को मोहित कर रही हैं (ताम्+उपुंस+आहुः) उन्हीं को कोई-कोई पुरुष कहते हैं। (अक्षरावान्+पश्यत्) ज्ञान दृष्टि वाला देखता है (अन्धः) अन्ध पुरुष (न+वि+चेतत्) नहीं जानता। (यः+कविः+पुत्रः) जो विद्वान् पुत्र है (सः+ईम्) वही (आचिकेत) सब प्रकार से जानता है। (यः+ता+विजानात्) जो उनको जानता है (सः+पितुः+पिता+असत्) वह पिता का पिता होता है।

इतना ही नहीं किन्तु कई एक स्थानों में दृष्टा ऋषि वेद द्वारा कहते हैं कि मैं अज्ञानी हूँ नहीं जानता, पवित्र मन से पूछता हूँ। यथा—

९—पाकः पृच्छामि मनसा विजानन्देवामेना निहिता पदानि।
वत्से वष्कयेऽधि सप्ततन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ॥

—ऋ० १। १६४। ५

(पाकः) पक्तव्य अर्थात् परिपक्वमति मैं (मनसा+अविजानन्) सुसंस्कृत समाहित मन से भी उसके गहन तत्व को न जानता हुआ (पृच्छामि) पूछता हूँ, क्योंकि (एना+पदानि) ये अतिगहन और सन्देहा-स्पदतत्व (देवानाम्) परम विद्वान् पुरुषों के समीप भी (निहितानि) छिपे हुये हैं।

दीर्घतमा ऋषि कहते हैं कि मैं अज्ञानी हूँ, मैं विद्वान् नहीं हूँ। मैं विद्वानों से पूछता हूँ। इन षट् संसारों को किसने एक कर रखा है। यथा—

१०—अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृछामि विद्मने न विद्वान् वि यस्तस्तम्भ षलिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम्। —ऋ० १। १६४। ६

(अचिकित्वान्) देवतत्व को न जानता हुआ मैं (चिकितुषः+चित्) परमार्थ तत्व के जाने वाले (कवीन्+अत्र) कवियों को यहाँ (पृच्छामि)

पूछता हूँ—(न+विद्वान्) मैं विद्वान् नहीं हूँ (विद्मने) जानने के लिए पूछता हूँ। (यः) जो परमेश्वर (इमान्+षट्+रजांसि) इन छः लोकों को (वि+ तस्तम्भ) अच्छी प्रकार अपने नियमों में बाँधे हुए है, (अजस्य+रूपे) उस परमात्मा अजन्मा के स्वरूप में (एकम्) एक ही (किमपिस्वित्) कुछ है।

सौचकि ऋषि कहते हैं कि मैंने पाप किया है। मैं नहीं जानता कि इसका कौन सा प्रायश्चित्त होगा। यथा—

११—किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान्।

—ऋ० १०।७९।६

मूर्धावान् आङ्गिरस कहते हैं हे पितरो! हे कविगणो! मैं अज्ञानी होकर पूछता हूँ। आपको क्लेश पहुँचाने के लिए नहीं, किन्तु विज्ञान के लिए मैं जिज्ञासा कर रहा हूँ। अग्नि कितने हैं? सूर्य कितने हैं? उषाएँ कितनी हैं? जल वा अन्तरिक्ष व्यापक पदार्थ कितने प्रकार के हैं?

१२—कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम्॥

—ऋ० १०।८८।१८।

मैं आपको कितने उदाहरण दिखलाऊँ, ऋषिगणों में से एक ही नहीं अपितु प्रायः सब ही जिज्ञासा का भाव प्रकट करते हैं। परमात्मा ने मानव जाति में जो मनन शक्ति दी है उसी ने इसको प्रेरणा करके अद्भुत बातें खोज करवाई हैं, खोज हो रहे हैं और होते रहेंगे। ऐ विद्वद्वर्गो! गवेषणा ही ने मानवजाति को पशु दशा से मनुष्य दशा तक पहुँचाया है।

□□

जिज्ञासाऽध्याय २

जिस पदार्थ की जिज्ञासा की जाती है, उसको जिज्ञास्य कहते हैं। अब प्रथम किसकी जिज्ञासा करनी चाहिए, इसके उत्तर में यह कहा जाता है कि प्रथम सबसे परमोपयोगी रात्रिन्दिवा कार्य में आने वाले जो-जो पदार्थ हैं उनको अच्छी प्रकार जानो। जैसे जल। किन-किन पदार्थों से जल बना हुआ है ? पृथिवी से ऊपर जल कैसे चढ़ता वा वाष्प होता है ? और वाष्प होकर मेघ रूप में और मेघ रूप से वर्षा रूप में कैसे आता है ? पुनः कभी-कभी देखते हैं कि वही जल छोटे-छोटे श्वेत उपल पत्थर-बनौरी बन-बन कर मेघ से गिरता है, इसका क्या भेद है ? इसी प्रकार कभी कुहक (कुहेसा, कुहरा) लोगों की दृष्टि घेर लेता है। कभी रात्रि में हिम इतनी गिरती है कि समस्त वृक्ष, लताएँ, गेहूँ, जौ आदि फसलें सूख जाती हैं। इसका क्या कारण ? जब कोई डुब्बा किसी कुएं वा नदी में डूबता है और बीस-बीस हाथ जल के नीचे चला जाता है तब इस डुब्बे को जल का बोझा क्यों नहीं प्रतीत होता। कोई वस्तु पानी में तैर जाती और कोई डूब जाती है, इसका क्या कारण ? इत्यादि अनेक वार्ताएँ प्रथम जल के सम्बन्ध में जानों। जो लोग कहते हैं कि जल एक स्वतः स्वतन्त्र तत्व है वे नहीं जानते। ऐसे ही एक इन्द्र नाम का देव मेघ वर्षाया करता है। मेघ के ऊपर जो कभी-कभी धनुष सा प्रतीत होता है, वह इन्द्रधनुष है। मेघ में जो महागर्जन होता है, वह इन्द्र गर्जता है। जो बिजली चमकती है, वह रुद्राणी है। जो बिजली गिरती है वह बलि को मारने के लिए इन्द्र फैंका करता है। मिट्टी के महादेव पूजने से वर्षा होती है वा जप, तप, करने से वा मेंढकों को मेघ देवता के नाम पर मार के चढ़ाने से वृष्टि होती है इत्यादि जो सहस्त्रों बातें देश में फैली हुई हैं वे सब ही मिथ्या हैं या सत्य हैं, उनकी परीक्षा करो। हे प्यारे! खोजो, मेघ होने का यथार्थ कारण क्या है ? इसके सम्बन्ध में आधुनिक बड़े विज्ञान शास्त्र पढ़ो।

जल के पश्चात् वायु परम आवश्यक पदार्थ है। वायु भी स्वतन्त्र

तत्व नहीं। कई एक पदार्थ मिलकर वायु बना हुआ है। हम सब सदा देखा करते हैं कि ग्रीष्म तथा कभी-कभी वर्षा ऋतु में वायु बहुत वेग से चलता है। हेमन्त और शिशिर में मन्द पड़ जाता है। किसी-किसी देश में पूर्वीय और किसी-किसी में पश्चिमीय वायु सदा चला करता है। समुद्र का वायु कुछ विलक्षण होता है। इन सबका क्या कारण? वायु को आँख से नहीं देखते, किन्तु जब वेग से बहने लगता है तो बड़े-बड़े वृक्ष और मकान गिर पड़ते हैं। इसमें ऐसी शक्ति कहाँ से आती है? वायु में गुरुत्व है या नहीं? प्रत्येक आदमी के ऊपर वायु का बोझा कितना रहता है। बोझा रहने पर भी हम लोगों को बोध क्यों नहीं होता! इस आश्चर्य बात को क्या आप जानना नहीं चाहते। पृथिवी से ऊपर कितनी दूर तक यह वायु है, वायु के रहने पर क्या हम क्षणमात्र भी जी सकते हैं।

इसके द्वारा शब्द कैसे दूर-दूर फैलते। इसके बिना अग्नि क्यों नहीं जलता? शब्द क्यों नहीं होता। यदि एक कोठरी से किसी यन्त्र के द्वारा वायु निकाल दिया जाए तो वहाँ न तो ध्वनि हो सकती और न अग्नि जलती इसका क्या कारण? इत्यादि वायु में भगवान् की लीला का अन्वेषण कीजिए। ज्यों-ज्यों वायु सम्बन्धी विज्ञान में निपुण होते जाएँगे त्यों-त्यों परमात्मा में परम प्रीति होती जाएगी। जो कोई कहते हैं कि वायु एक चेतन देव है वह कभी-कभी मनुष्य का रूप धर स्त्रियों पर मोहित हो उनके पतिव्रत को भग्न करता है; जैसे—केसरी की स्त्री अंजना और वायु की कथा है। यह वायु ४९ भाई हैं इत्यादि मिथ्या-मिथ्या कथाएँ सुना-सुना कर जगत् को भ्रम जाल में फँसा रहे हैं, वे स्वर्थान्ध अज्ञानी मनुष्य जाति के महाशत्रु हैं। हे जिज्ञासुओ! जैसे जल एक जड़ वस्तु है वैसे ही यह पवन भी जड़ है, यह कभी मनुष्य का रूप धारण नहीं कर सकता। वायु विज्ञान पढ़ो, आपको सब कुछ का ज्ञान होगा।

इसके पश्चात् जिस पृथिवी के ऊपर आप निवास करते हैं उसको अच्छी तरह से जानें। परमात्मा की अद्‌भुत लीलाएँ इस पृथिवी में देखेंगे। यद्यपि उसकी विभूतियाँ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि में भी बहुत ही आश्चर्यजनक हैं, तथापि वे सब दूर हैं, सुगमता से आप उन्हें नहीं जान सकते। पृथिवी सम्बन्धी विद्याएँ बहुत सरलता से जान सकते हैं।

इसकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई कितनी है, यह गोल या चटाई के समान चिपटी है। सूर्य के चारों तरफ करीब ३६५ दिन में कैसे घूम आती है। इसके घूमने से दिन-रात्रि कैसे बन जाते। ऋतु कैसे परिवर्तन होती। उत्तरायण और दक्षिणायण किस प्रकार होते। अथवा यह घूमती है या नहीं। यदि नहीं घूमती तो किस आधार पर यह नीचे या ऊपर जा रही है। आप देखते हैं कि कहीं पृथिवी के भीतर से अग्नि और कहीं गर्म जल निकल रहा है। कभी भूकम्प होता। कभी समुद्र का पानी हटकर एक द्वीप बन जाता। इसके विपरीत कहीं सूखी जमीन समुद्र बन जाती। कहीं सदा रात्रि के समान ही रहता। कहीं ६ कहीं ५ कहीं ४ कहीं ३ कहीं २ कहीं १ ऋतु होती है। इन सबका क्या कारण ? पृथिवी के ऊपर विचित्र घटनाओं को देखकर भी क्या आपके हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती ? सूर्य पूर्व से पश्चिम आते हुए दीखता है, क्या यह सत्य है ? क्या कभी आपके हृदय में ऐसा प्रश्न उठता है ? जब आप पृथिवी सम्बन्धी विद्याएँ पढ़ेंगे तो आपको विस्पष्ट मालूम होगा कि सूर्य पूर्व से पश्चिम को नहीं जाता। जैसे नौकास्थ पुरुष को अपने विपरीत वृक्ष आदि चलते हुए प्रतीत होते हैं वैसे ही पश्चिम से पूर्व की ओर भ्रमण करती हुई पृथ्वी के ऊपर स्थित मनुष्यों को सारे ग्रह पश्चिम की ओर आते हुए प्रतीत होते हैं। पुनः यह भूमि जल से कितनी घिरी हुई है। समुद्र किस रूप में इसके ऊपर स्थित हैं।

समुद्रों के कारण भूमि पर क्या-क्या परिवर्त्तन होता है। कैसे समुद्र से वाष्प चलकर आकाश में मेघ बन वर्षा होने लगती है। ज्वारभाटा किस प्रकार हुआ करता है इत्यादि सहस्रशः बातें पृथिवी के सम्बन्ध में अध्ययन कीजिए। यह पृथिवी पहले कैसे बनी, फिर धीरे-धीरे इसके ऊपर जीव-जन्तु कैसे हो गये। मनुष्य कहाँ से आ गये। पर्वत, नदियाँ, समुद्र, कैसे बन गये ! क्या इत्यादि बातों के जानने के लिए आपके मन में उत्कण्ठा नहीं होती ? यही तो ईश्वर की परम विभूति है। भूगोल, भूगर्भ विद्या, वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, प्राणियों के क्रमाभ्युदयशास्त्र इत्यादि विद्याओं के अध्ययन से परमात्मा के अकथनीय कौशल का किञ्चित्-किञ्चित् बोध होने लगता है।

इस प्रकार प्रथम पृथिवीस्थ पदार्थों की पूरी जिज्ञासा कीजिए।

तदनन्तर ऊपर दृष्टि दीजिये। सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की ओर दृष्टि दीजिये। जिन नक्षत्रों को यहाँ से बहुत ही छोटे-छोटे टिमटिमाते हुए देखते हैं, क्या सचमुच उतने ही छोटे या बहुत ही बड़े हैं? इस पृथिवी से वे कितनी दूरी पर हैं? वे हमारे ऊपर क्यों नहीं गिर पड़ते? पृथिवी से सूर्य-चन्द्र कितने दूर व कितने लम्बे चौड़े हैं, वे हैं क्या? हे मनुष्यो! इन बातों को जानिये। मिथ्या-मिथ्या बातों में किस प्रकार फँसे हुए रहते हैं। आप प्रथम उनके विषय में प्रश्न कीजिए। जानिये और बारम्बार विचारिये जिनको आँखों वा अन्यान्य इन्द्रियों वा किसी दूर निरीक्षण और सूक्ष्म वस्तु निरीक्षण यन्त्रों से देखते वा अनुभव करते हैं। आप अपनी चारों तरफ स्थित वस्तुओं को जानें, परन्तु शोक की बात है कि प्रथम ही आप उन विषयों को पूछना वा जानना चाहते हैं जिनको आप देख नहीं सकते। जैसे वे बतला दिए जाएँगे वैसे ही आपको मान लेने पड़ेंगे, सोचिए तो वैसे प्रश्नों से आपको अभी क्या प्रयोजन! आप जानना चाहते हैं कि शरीर को छोड़ यह जीव कहाँ जाता, कैसे जाता? पृथिवी पर कितने दिन रहता। पुनः कहाँ जाता। कोई इसको साथ ले जाता वा एकाकी ही यात्रा करता है। देह छोड़ते ही क्या दूसरा देह पा लेता या कहीं जाकर स्वर्ग वा नरक में वास करता रहता है। यह जीव कैसा है। कितना छोटा, कितना बड़ा, कितना मोटा इत्यादि अज्ञेय वस्तु को आप जानना चाहते हैं। किन्तु इस जीव में कितनी शक्ति है। किस प्रकार कोई बुद्धिमान् और कोई मूर्ख बना रहता है। किस प्रकार बुद्धिमानों ने ऐसी-ऐसी विद्याएँ निकालीं, कैसे इस जीवात्मा से रेल, तार, विमान इत्यादि सहस्रशः विद्याएँ निकली, कैसे उत्तम-उत्तम काव्य शास्त्र बन गये इत्यादि प्रत्यक्ष वस्तुओं की जिज्ञासा नहीं करते। आप सोचें तो किसी ने आपसे कह दिया कि जीवात्मा अणु है वा विभु है वा मध्यम परिमाण है। आप अब क्या मानेंगे। आँख से देखते नहीं। पदार्थ ज्ञान बिना तर्क भी ठीक नहीं हो सकता। इस अवस्था में केवल विश्वास करना ही पड़ेगा। अब ऐसे-ऐसे प्रश्नों से क्या प्रयोजन? पुनः किसी ने कहा कि यह जीवात्मा शरीर को छोड़ एक ही दिन में चार लाख कोश दूर यमपुरी में पहुँच जाता है। दूसरे ने कहा कि नहीं? यह शरीर को छोड़ प्रथम दिन बीस हजार कोश चलता है। दूसरे दिन चालीस हजार कोश, तीसरे दिन

साठ हजार कोश, इस प्रकार दश दिन चलकर यमपुरी में जा पहुँचता है। किसी ने कहा कि यह सब झूठी बात है। आत्मा न कहीं जाता, न आता। यहाँ ही रहता है। किसी शरीर में प्रवेश कर जाता इत्यादि। तीसरे ने आकर कहा कि यह भी मिथ्या है। आत्मा कोई वस्तु ही भिन्न नहीं है। यह भ्रममात्र है, ब्रह्म ही जीव है। यह भी कथन मात्र है। न मैं हूँ, न तू है। सारी माया है। माया क्या है ? अरे माया भी कोई वस्तु नहीं। किसी ने कहा कि ये सब पागल हैं। जीव एक शरीर से पृथक् वस्तु है। परन्तु हम नहीं कह सकते हैं कि वह कैसा है। अब आप विचार करें कि जहाँ ऐसी अन्धेर लीलाएँ हैं वहाँ आप क्या जान सकते हैं। हाँ, मूर्ख, मन्दमति, पुरुषों के लिए ऐसे ही विषय रोचक होते हैं। हे मेरे धार्मिक पुरुषो! प्रथम आप प्रत्यक्ष पदार्थों की जिज्ञासा करें, अप्रत्यक्ष की ओर न जाएँ। जब देश में विद्या नष्ट हो जाती तब पाखण्डी, धूर्त, स्वार्थी उत्पन्न होते हैं और वे मूर्खों को फँसाने के लिए अनेक जाल बनाते हैं, इसलिए आप कभी ऐसी बातों की ओर न जाएँ जिनको आप देखते नहीं।

पदार्थ ज्ञान की परमावश्यकता

चारों वेद, छहों अङ्ग, छहों उपाङ्ग, धर्मशास्त्र तथा अष्टादश पुराण इत्यादि-इत्यादि सब शास्त्र पदार्थ ज्ञान के अधीन हैं। जब तक आपको पूर्णरीति से पदार्थों का परिचय नहीं होता तब तक न लौकिक और न परलौकिक कार्य यथाविधि निष्पन्न होंगे। बात-बात में आप ठगे जाएँगे। वैदिक यज्ञ वैदिक काल में कुछ उत्तर प्रत्युत्तर होते हैं, उनके पदार्थज्ञान न होने से वैदिक यज्ञ ही व्यर्थ है; जैसे—

को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्।
कः सूर्यस्य वेद वृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः॥

—यजुर्वेद। २३।५९

(अस्य भुवनस्य नाभिं कः वेद) इस संसार के नाभि अर्थात् बन्धनस्थान आदिकारण और परस्पराश्रयाश्रयिभाव को कौन जानता है ? (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्) द्युलोक, पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक इन तीनों लोकों को कौन जानता है ? (वृहतः सूर्यस्य जनित्रं कः वेद) इस महान् सूर्य के जन्म को कौन जानता है ? (यतो जः चन्द्रमसं

कः वेद) जहाँ से चन्द्र उत्पन्न होता है अर्थात् शुक्लपक्ष में बढ़ता और कृष्णपक्ष में घटता कैसे है, इसको कौन जानता। यहाँ चार प्रश्न हैं। इनके समाधान में कहा जाता है कि मैं जानता हूँ। अब आप बतावें कि कोई मूर्ख या किंचित् पढ़ा हुआ अथवा एक-एक शास्त्र का ज्ञाता कभी भी इन चारों का यथाविधि यथोचित समाधान कर सकता है? मैं छोटे से अन्तिम प्रश्न पर विचार करता हूँ तो सारे सम्प्रदायी पुस्तकों में इसका समाधान अशुद्ध पाता हूँ। चन्द्रमा क्यों घटता, क्यों बढ़ता। उसकी उत्पत्ति कैसे हुई, इस पर नाना विप्रतिपत्तियाँ (परस्पर विरुद्ध वचन) देखता हूँ। कोई कहता है कि छः दिनों में ही यह सम्पूर्ण विश्व बन गया, कोई कहता है कि समुद्र से या अत्रि की दृष्टि से चन्द्र उत्पन्न हुआ है। देवता और पितर दोनों दल बराबरी चन्द्रस्थ अमृत पीते हैं, इस हेतु यह घटता-बढ़ता रहता है। कहिये यही चन्द्रोत्पत्ति का ज्ञान है? प्यारे मित्रो! इस प्रश्न के उत्तर के लिए क्या-क्या जानना चाहिए। शास्त्र पढ़कर देखो, अतः तुम यदि वेदों की रक्षा करना चाहते हो तो पहले पदार्थ विज्ञान सम्बन्धी शास्त्रों को अच्छी प्रकार पढ़ो। उन चारों प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया जाता है—

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्।
वेद सूर्यस्य वृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसंयतोजाः॥

—यजुः० २३। ६०

१—मैं इस संसार के नाभि को जानता हूँ। २—मैं द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष को जानता हूँ। ३—मैं महान् सूर्य का जन्म जानता हूँ। ४—मैं चन्द्रमा को जानता हूँ जहाँ से वह उत्पन्न होता है। वेद भगवान् का यह उत्तर बतला रहा है कि ऐ मनुष्यो! प्रथम तुम पदार्थतत्त्ववित् बनो तब वैदिक कर्मों में प्रवृत्त होवो। इसी प्रकार नैयायिक तर्क क्या करेंगे जब उन्हें पदार्थ ज्ञान ही पूरा-पूरा नहीं है। पदार्थ ज्ञान के ऊपर ही तर्क भी आश्रित हैं। मान लो कि कोई कहता है कि पृथिवी तीक्ष्ण वेग से लट्टू के समान घूम रही है। अब इस पर नैयायिक यदि कहें कि नहीं। आँख से पृथिवी को घूमती हुई नहीं देखते, अतः आपका कथन मिथ्या है तो क्या नैयायिक का इतना कहना पर्याप्त होगा? नैयायिकों के उस कथन को वैज्ञानिक पुरुष अति तुच्छ दृष्टि से देखेंगे और जैसे बालक के वचन पर विद्वान् हँसता है वैसे ही हँस देवेंगे।

इसी प्रकार आजकल के वैशेषिक और नैयायिक मिलकर कहें कि वायु और जल अमिश्रिततत्त्व हैं तो क्या वैज्ञानिक इनके शिर को सावित रहने देंगे ? मुख्यतया ऑक्सीजन एवं नाइट्रोजन इन दो वाष्पीय पदार्थों से वायु बना हुआ है और ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन इन दो पदार्थों के रासायनिक संयोग से जल बनता है। इसी प्रकार भारत भूषण प्रातः स्मरणीय श्री भास्कराचार्य सिद्धान्तशिरोमणि प्रभृतिग्रन्थ विरचयिता यदि जीते रहते तो पृथिवी अचला है, स्वशक्ति से आकाश में स्थिर है और सूर्य इसकी परिक्रमा करता है, ऐसे कहते हुए श्री भास्कराचार्य जी के आगे मोटे-मोटे लम्बे-लम्बे लट्ठ ले-ले कर वैज्ञानिक पुरुष खड़े हो जाते। किमधिकम्। प्यारे आलस्य त्यागो, पदार्थ ज्ञान की ओर आओ। पदार्थ ज्ञान-विज्ञान के ही गुलाम समस्त शास्त्र हैं। हाँ, मैं यह अवश्य जानता हूँ कि पुराणों ने आपकी बुद्धि के ऊपर ऐसा अटूट ताला लगा दिया है। उस कोठरी का खुलना दुष्कर हो गया है। कुछ चिंता नहीं यह शास्त्र तीक्ष्ण महान् चुम्बक लोहा है। अथवा इसके निकट सब तरह की कुंजियाँ हैं यदि तुम चाहोगे तो वह ताला खुल जाएगा।

❑❑

वेद—जिज्ञासाऽध्याय ३

पूर्व उदाहरणों से विदित है कि वैदिक समय के ऋषिगण बहुत ही तलाश में लगे हुए थे। ऋषियों के अनुगामी पुरुषों को उचित है कि उनके पथ पर चलें। वे नर पशु हैं जिनका मन प्राकृत घटनाओं से प्रेरित हो खोज में नहीं लगता है। अथवा उस–उस विद्या के ज्ञाता के समीप जाके नहीं पूछते हैं। भूकम्प, सूर्य–चन्द्र का उपराग, चन्द्र का घटना–बढ़ना, इन्द्रधनुष, बवण्डर, पूर्वीय–पश्चिमीय वायु और समुद्र का ज्वारभाटा आदि शतशः घटनाएँ प्रतिदिन, प्रतिमास, प्रतिवर्ष होती ही रहती हैं। इनके सत्य कारण जानने के लिए जो प्रयत्न नहीं करता है वह जगत् में अजागलस्तनवत् व्यर्थ है। यदि कहें कि ये सब अति तुच्छ बातें हैं। पुराणों में इन सबका उत्तर एक–एक श्लोक में देके झंझट खत्म कर दिया गया है, अब हम इनमें क्या तलाशी करें। जिनके सहस्र फणों पर पृथिवी पुष्पवत् स्थापित है वह जब–जब करवट लेना चाहता है अथवा जब कभी देह सुगबुगाता तब ही भूकम्प होता, इसमें कौन–सी विशेषता और आश्चर्यप्रदवात है जिसकी जिज्ञासा में अपना समय व्यर्थ बितावें। राहु की सूर्य–चन्द्र से शत्रुता हो गई है वह कभी–कभी बदला लेने के हेतु उन पर धावा करता है। यही ग्रहण है। देवता और पितर बारी–बारी चन्द्रस्थ अमृत पिया करते हैं, अतः वह घटता–बढ़ता है। बलि के मारने के लिए इन्द्र अपना धनुष तैयार करता। भूत प्रेतों को जब कभी यात्रा करनी होती है तो वात्या अर्थात् बवण्डर पैदा होता है। देवता जब सभा करने को बैठते हैं तब सूर्य और चन्द्र की चारों तरफ परिधि=गोलचक्र बन जाता है वहाँ बैठकर देवगण विचार करते हैं। समुद्र का पुत्र चन्द्रमा है। अपने पुत्र से मिलने के हेतु समुद्र बढ़ता है। इत्यादि सहस्रशः बातों का समाधान ऐसा बुझा–बुझा कर पूर्ण करते हैं कि एक छोटा बच्चा भी समझ जाता है तब ऐसी–ऐसी प्राकृत घटनाओं के विचार में केवल बालक और बालिग जिन्हें कोई काम नहीं, भले ही पड़े रहें। ईश्वर का भजन करना ही मनुष्य जीवन का परम उद्देश्य व पुरुषार्थ है। परमार्थ की बात कीजिए। माया

की बातें क्यों जगत् में फैलाते हो। इसमें क्या रखा है। लोग नास्तिक हैं ही, इससे अधिक घोर क्रूर हिंसक वन के क्षयकारी हो जाएँगे। समाधान। श्रद्धालु विश्वासी जनो! आपने जो कहा है वह आपका दोष नहीं, ऐसे ही कुल और समाज में आपका जन्म हुआ है कि ऊपर की ओर दृष्टि नहीं जाएगी। रेणुकण ऊर्ध्व जा के भी नीचे ही गिरता है। शुक जैसे काक नहीं पढ़ता। भारतवासी इस समय विपरीत दिशा को जा रहे हैं, न जाने किसी अन्धकारमय कोठरी में वे गिरेंगे। सोचिये। आपने पुराणों पर विश्वास कर लिया तब तो बातुल जैसे बकते हैं। स्वयं भी कभी भृगु जैसे तपकर इन घटनाओं की परीक्षा की है (१) डार्विन जैसे कभी दो-चार दिन भी इसके लिए सर्फ किए हैं (२) ऋषि भरद्वाज जैसे एक जीवन भी इस महान् कार्य में परायण हुए हैं। जो जन—समुदाय किसी एक के पीछे चल पड़ता है उसका अध:पतन बायवलीय आदम सा (४) पौराणिक नहुष सा (५) अथवा नियागरा जलप्रताप सा अथवा रात्रि का ज्योतिष का सा होता है। पुराणों के ही पीछे मत चलिये। पृथिवी पर और भी तो कोहनूर जैसे बहुमूल्य शास्त्र

नोट—१ ऋषि भृगुजी पांच बार अपने पिता के निकट ब्रह्म विद्या की शिक्षा ले-ले कर मनन करते रहे। २—डार्विनसाहब ने मनुष्य का विकास पृथिवी पर कैसे हुआ? इसकी खोज में पृथिवी पर के प्राय: चारों प्रकार के जीवों की पूरी तलाशी ले ली और इसी में अपना सम्पूर्ण जीवन बिता दिया। ३—भरद्वाज जब परम वृद्ध हो गये तब इन्द्र आके बोले कि ऋषे यदि मैं आपको एक शतायु और दूँ तो आप उससे क्या करेंगे। भरद्वाज ने कहा कि विद्या ही खोजता रहूँगा। इन्द्र वर देके चले गये और वह पुन: विद्या खोजने लगे। इस प्रकार भरद्वाज को तीन शतायु और भी दिये गये वह विद्या ही खोजते रहे। अन्त में आकर इन्द्र ने कहा "अनन्तावै वेदा:" वेद अर्थात् विद्याएँ अनन्त हैं, कहाँ तक आप ढूँढ़ेंगे। बहुत प्रशंसनीय जीवन आपका बीता है अब मुक्ति धाम चलिये। यह आलंकारिक कथा है। ऋषियों के परम परिश्रम दिखलाने के लिए अतिशयोक्ति और मनुष्य प्रवृत्यर्थ रोचक है। ४—बायबल में कथा आती है कि एक शैतान के बहकाने से आदम ने निषिद्ध फल खाया। इस अपराध के लिए वह स्वर्ग से गिरा दिया गया। ५—इन्द्राणी के फन्दे में पड़कर राजा नहुष, स्वर्ग से गिर गया और अजगर साँप हो गया ये दोनों ही काल्पनिक कथाएँ हैं। ६—किसी-किसी रात्रि को आकाश से बहुत सी ज्योतियाँ गिरती हुई दीखती हैं। इसे कोई तारा टूटना कहते हैं। वास्तव में वह वायु है किसी कारणवश अग्निवत् जल उठता और गिरता हुआ प्रतीत होता है।

हैं और आपके अभ्यन्तर में भी तो विवेक रेडियम स्थापित है, इनके द्वारा भी देखा कीजिए। ६।

विश्वासियो! जब प्रत्यक्ष पदार्थों का ज्ञान ठीक से पुराणों में वर्णित नहीं है तब अज्ञेय, समाधिगम्य परमात्मा का निरूपण उनमें तथ्य ही है हम कैसे कह सकते हैं। देखिये! पुराण कहते हैं कि यह गंगा स्वर्ग से गिरती है किन्तु अब लाखों विज्ञ देख आए हैं कि वह हिमालय के एक झील से बहकर निकलती है। वहाँ ऊपर से इसको गिरती हुई कोई नहीं देखता। फिर किस प्रकार ऐसी बात पर विश्वास करें। यदि कोई भी सिद्ध पौराणिक भागीरथी को रुद्र की जटा से वा विष्णु के पैर से निकलती हुई दर्शन करवाते तो सब ही इसको कबूल कर ही लेवेंगे। इनकार करने की कोई भी गुंजाइश न रहेगी। दूसरे कहते हैं कि मगध की कर्मनाशा नदी के ऊपर लटके हुए त्रिशंकु के मुँह से लार गिरता रहता है, अतः उसमें नहाना पाप है। यहाँ विचारने की बात है। मेघ से गिरते हुए पानी को लोग बराबर देखा करते हैं तब वैसा ही त्रिशंकु का लार गिरता हुआ क्यों नहीं दीखता, यदि वह नहीं दीखता तब कर्मनाशा का जल भी न दीख पड़े। शैव कहते हैं कि काशी त्रिशूल पर स्थापित स्वर्णमयी। इसी हेतु अभी तक मैथिल ब्राह्मण वहाँ से मिट्टी वा मिट्टी के बर्तन नहीं लाते, क्योंकि वहाँ की मिट्टी सोना है उतना दाम दे नहीं सकते। किन्तु भूगर्भ विद्या के अध्ययन से जाना जाता है कि यह सारी बातें मिथ्या हैं। यदि वहाँ कुछ भी विश्वनाथ का प्रताप होता तब औरंगजेब इनका मन्दिर तुड़वा मस्जिद ही कैसे बनाते! पौराणिक चिरंजीवी मार्कण्डेय वलि, व्यास महाबीर, विभीषण कहाँ हैं! किस पर्वत पर परशुराम तप कर रहे हैं। उनका वह २१ बार क्षत्रियों को अन्त करने हारा बल कहाँ है? प्यारे! ये सब गप्प हैं। तुम कहते हो कि अभी तक लंकाद्वीप में राक्षसों के साथ विभीषण राज्य कर रहे हैं। अंग्रेजों का राज्य वहाँ नहीं है। भला सोचो तो अयोध्या में अंग्रेज राज्य करते हैं या नहीं? जब रावणान्तक रामराज्य में ये विराजमान हैं तब रावण राज्य में इनके राज्य का होना असंभव कैसे? पुराण कहता है कि मुंगेर के एक झुण्ड में जो गरम जल निकलता है उसका कारण वहाँ सीताजी का स्नान है। परन्तु यदि वैसा होता तब वहाँ ही खोदकर अंग्रेज कैसे गरम जल निकाल इसको

मिथ्या सिद्ध करते। तुम तैंतीस कोटि देवता पूजते हो। कभी अपनी आँखों से किसी देवता को देखा—नहीं। विचारशील पुरुषो! इन मदोन्मत्त कथाओं में पड़कर अपना अप्राप्य जीवन मत जाने दो। आजकल विज्ञान का समय है यदि इसमें पीछे रह जाओगे तो तुम्हारा कहीं भी पता नहीं लगेगा। सोनपुर के कार्तिकी मेले में जैसे अबोध बालक भूल जाते हैं ऐसे तुम भी मनुष्य समाजों से कहीं पृथक् हो जाओगे। पुराणों की बातें मत किया करो वे बायबल के शैतान के समान हैं।

जैसे निरपराधी समुद्र के उत्तरतटवासियों को राम के बाण ने शोण लिया। विष्णु के चक्र ने दुर्वासा को पतित कर ही छोड़ा वैसा ही पुराण आर्यावर्त को निगले बिना न छोड़ेगा, पुराण महाअजगर इस भारत बिहग के समीप पहुँच गया है अब निगलने की थोड़ी ही देरी है। भाइयो! यदि इस अजगर से अब भी बचना चाहते हो तो विज्ञान की शरण में भाग जाओ। त्राण की अब भी आशा है जयपुर के रामनिवास बाग के फूल, कलकत्ते के अजायब घर के मृत शरीर पंजर! जियालोजिकल गार्डन के समस्त प्राणी, जापान की रंग-बिरंगी मछलियाँ, अफ्रीका के विचित्र पक्षी आपके मन को अपनी ओर आकर्षण नहीं करते, पृथिवी पर घूम-घूम कर देखो। चकित हो जाओगे। मैं कहाँ तक लिखूँ, यदि आपको वेदों, शास्त्रों तथा अन्यान्य धर्म पुस्तकों में विश्वास है तो उन्हीं ग्रन्थों से कुछ बातें दिखाता हूँ कि वे किस-किस वस्तु के वर्णन करने से इतने महत्त्व को पाए हुए हैं। पूर्व में वेदों के अनेक उदाहरण दिखला चुका हूँ कि परमात्मा से प्रेरित होकर ऋषिगण कैसी-कैसी बातों की जिज्ञासा करते हैं। हे मेरे श्रावको! सुनो, वे महर्षि इन्हीं अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत्, सूर्य, पृथिवी, जल, वृक्ष, वनस्पति, प्रातःकाल, पूर्णिमा, अमावस्या, घोड़े, हाथी, जलचर, थलचर, नभचर, आदि का ही तो वर्णन करते हैं। परमात्मा की विभूतियों से वे ऋषिगण इतने मोहित हुए कि सुध-बुध भूलकर इनके ही वर्णन करते ठकमका गए। मैं दो-चार बातें प्रथम यजुर्वेद की कहता हूँ—

यजुर्वेद—प्राणायस्वाहा। अपानायस्वाहा। व्यानायस्वाहा। चक्षुषेस्वाहा। श्रोत्रायस्वाहा। वाचेस्वाहा। मनसेस्वाहा।

—यजुः २२।२३

यहाँ पर प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, वाक् और मन के लिए स्वाहा

कहा गया है। परन्तु ये प्राण-अपानादि कौन वस्तु हैं, यह आप यदि न जानेंगे तो इससे कौन सा फल प्राप्त करेंगे? पुनः—

प्राच्यैदिशेस्वाहा। अर्वाच्यैदिशेस्वाहा। दक्षिणायैदिशेस्वाहा। अर्वाच्यैदिशेस्वाहा। प्रतीच्यैदिशेस्वाहा। अर्वाच्यैदिशेस्वाहा। उदीच्यैदिशेस्वाहा। अर्वाच्यैदिशेस्वाहा। ऊर्ध्वायैदिशेस्वाहा। अर्वाच्यैदिशेस्वाहा। अर्वाच्यैदिशेस्वाहा। अर्वाच्यैदिशेस्वाहा।

—यजुः २२। २४

यहाँ सब दिशाओं और विदिशाओं के नाम पाए जाते हैं। प्राची=पूर्व दिशा। दक्षिण दिशा। प्रतीची=पश्चिम दिशा। उदीची=उत्तर दिशा। ऊर्ध्वा=ऊपर की दिशा। अर्वाची=नीचे की दिशा और इन दिशाओं का बीच की दिशाएँ, जो अर्वाची कहाती हैं, इन सबके लिए स्वाहा। ज्ञानी पुरुषो! इन्हीं वस्तुओं का वैशेषिक और आजकल के बड़े-बड़े विद्वान् बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ निरूपण कर रहे हैं। सोचिए तो पूर्व-पश्चिम दिशा कहाँ से और कौन वस्तु है। इनका कहाँ अन्त है। ऐसे ख्यालात किस प्रकार उत्पन्न होते हैं। क्या इसके पता लगाने के लिए आपको प्रयत्न नहीं करना चाहिए! पुनः—

अद्भ्यःस्वाहा। वार्भ्यऽस्वाहा। उदकाय स्वाहा। तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा। स्रवन्तीभ्यःस्वाहा। स्यन्दमानाभ्याः स्वाहा। कूप्याभ्यः स्वाहा। सूद्याभ्यःस्वाहा। धार्याभ्यः स्वाहा। अर्णवाय स्वाहा। समुद्राय स्वाहा। सरिराय स्वाहा॥ —यजुः २२। २५।

यहाँ सब प्रकार के जलों के नाम पाए जाते हैं। आप्, वार और उदक ये तीनों नाम तीन प्रकार के जलों के हैं। तिष्ठन्ती=नदियाँ वा समुद्रादिकों के जल जो खड़े हैं। स्रवन्ती=किसी पर्वत के वा पृथिवी के छिद्र से जो जल सवित हो रहा है। स्पन्दमाना=जो धीरे-धीरे बह रहा है। कूप्या=कुएँ का जल। सूद्या=खाते का जल। धार्या=गृह में वा कहीं जमा किया हुआ जल। अर्णव और समुद्र ये दोनों नाम सागर के हैं।

एक ही कण्डिका में सब प्रकार के जलों के नाम आ गये हैं। कहिये आजकल के वैज्ञानिक पुरुष इन्ही जलों के तो तत्त्वावधान कर रहे हैं, जल क्या वस्तु है। क्या आप जानते हैं। नैयायिक, वैशेषिक और सांख्य इसको कौन वस्तु ठहराते और आजकल के वैज्ञानिक क्या कहते हैं। इनके भिन्न-भिन्न सिद्धान्त तो पढ़िये। जैसे पिपासित मृग

जल की ओर दौड़ता है वैसे ही इस विद्या की ओर दौड़िये। आप समुद्र से डरते हैं, क्योंकि समुद्र आपसे बहुत दूर है। प्रति साल कई लक्ष नर-नारियाँ समुद्र को देखे बिना ही मर जाते हैं। भारतवर्ष के मरुदेश निवासी प्रायः नदियों का भी दर्शन नहीं करने पाते हैं। कोलम्बस, वास्कोडिगामा और मजिल्लाँ के समान सामुद्रिक यात्रा करके परमात्मा की आश्चर्य विभूतियाँ देखो। पुनः—

वाताय स्वाहा। धूमाय स्वाहा। अभ्राय स्वाहा। मेघाय स्वाहा। विद्योतमानाय स्वाहा। स्तनयते स्वाहा। स्तनयते स्वाहा। अवस्फूर्जते स्वाहा। वर्षते स्वाहा। अववर्षतेः स्वाहा। उग्रं-वर्षते स्वाहा। शीघ्रं वर्षते स्वाहा। उद्गृह्णन्ते स्वाहा। उद्गृहीताय स्वाहा। प्रुष्णते स्वाहा। शीकायते स्वाहा। प्रुष्वाभ्यः स्वाहा। ह्लादुनीभ्यः स्वाहा। नीहाराय स्वाहा। —यजुः० २२। २६

यहाँ सब प्रकार के मेघों का वर्णन है। मेघ कैसे बनता है, इसकी कौन-कौन दशाएँ होती हैं, यहाँ इनके नाम देखते हैं। सूर्य की गरमी की सहायता से वायु पानी को ऊपर चढ़ाता है। फिर वह धूम सा दीखता है। फिर मेघ अर्थात् बरसने-सा हो जाता है तब उसमें विद्युत गर्जन, वर्षण, किञ्चित् वर्षण, अधिक वर्षण आदि व्यापार होने लगते हैं, पीछे छोटे-छोटे बूँद होकर समाप्त होने लगता है। पुनः इसी जल का एक भेद कभी-कभी जाड़े के महीने में कोहरा सा दीखता है। इसको वेद में नीहार कहते हैं।

चिन्तकजनो! क्या तुम समझते हो कि कैसे समुद्र से वा पृथिवी से जल उठकर मेघ बन पृथिवी को पुनः-पुनः सिक्त करता रहता है। कभी-कभी मेघ से पानी के छोटे-छोटे पत्थर किस प्रकार गिरते हैं? ये उपल कैसे बनते हैं? फालगुन, चैत्र, वैशाख में कभी भयंकर रूप से जलीय पत्थर गिरते हैं, जिससे किसानों को बड़ी हानि पहुँचती है। इसका क्या कारण है? कोहरा सा क्या पदार्थ और कैसे बनता है, क्या मेघ की दौड़ती हुई काली घटा आपके मन को मोहित नहीं करती? इसके चरित्रों से परिचित होना क्या आप नहीं चाहते। यदि चाहते हैं तो पदार्थ विद्या को ध्यान से पढ़िये। कैसी-कैसी आश्चर्य विभूतियाँ दीख पड़ेंगी। पुनः—

नक्षत्रेभ्यःस्वाहा। नक्षत्रियेभ्यःस्वाहा। अहोरात्रेभ्यःस्वाहा।

अर्द्धमासेभ्यःस्वाहा। ऋतुभ्यःस्वाहा। आर्तेभ्यःस्वाहा। संवत्सराय स्वाहा। द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। चन्द्राय स्वाहा। सूर्याय स्वाहा। रश्मिभ्यःस्वाहा। वसुभ्यःस्वाहा। रुद्रेभ्यःस्वाहाः। आदित्येभ्यःस्वाहा। मरुद्भ्यःस्वाहा। विश्वेभ्योदेवेभ्यःस्वाहा। मूलेभ्यःस्वाहा। शाखाभ्यःस्वाहा। वनस्पतिभ्यःस्वाहा। पुष्पेभ्यःस्वाहा। फलेभ्यःस्वाहा। ओषधीभ्यःस्वाहा।

—यजुः० २२। २८

यहाँ नक्षत्र से लेकर ओषधि पर्यन्त के नाम हैं। रात्रि में नक्षत्र क्यों दीखते। वे संख्या में कितने और कितनी दूर हैं। इनको कौन गिन सकेगा, किन्तु आजकल बड़े-बड़े दूरबीन बनाए गये हैं, जिनके द्वारा इनके बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं। शुक्ल और कृष्ण पक्ष क्यों होते। सूर्य और चन्द्र कहाँ उदय-अस्त होते हैं। चन्द्र तो दिन में भी दृश्य होता, परन्तु सूर्य रात्रि को कहाँ चला जाता। फिर वायु, जल, गर्मी और प्रकाश की सहायता से कैसे मूल, शाखा, वनस्पति, पुष्प, फल और विविध ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं। इनके क्या-क्या स्वभाव हैं। प्यारे! इस एक कण्डिका के तत्त्व जानने के हेतु अनेक विद्याओं की जरूरत है। ज्योतिष शास्त्र, वनस्पति शास्त्र, भौतिक शास्त्र प्रभृति विद्याओं को जाने बिना इनका भेद कैसे भासित होगा। पुनः—

वसन्ताय कपिञ्जलाना लभते। ग्रीष्माय कलाविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीन्, शरदेवर्त्तिका हेमन्ताय ककरान् शिशिराय विककरान्॥

—यजु०। २४। २०

यहाँ बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर इन छवों ऋतुओं के नाम हैं। पुनः यहाँ एक और भी बड़ी विलक्षणता और विद्या की ओर ले जाने वाली वार्ता देखते हैं। वसन्त ऋतु के लिए कपिञ्जल=पौंडूकी या कबूतर। ग्रीष्मार्थ कलविंक=चरकपक्षी। वर्षा के लिए तीतर। शरद के लिए बटेर। हेमन्त के लिए ककरनाम के पक्षी। और शिशिर के लिए विककरनाम के पक्षियों को प्राप्त करें। जब तक ऋतु विद्या और पक्षी विद्या का वास्तविक तत्त्व न जानेगा तब तक इसका भेद कैसे मालूम होगा। वसन्त और कपिञ्जल से क्या सम्बन्ध है? इन पक्षियों का क्या-क्या स्वभाव है। यह सब अवश्य ज्ञातव्य है।

समुद्र शिशुमारानालभते। पर्जन्याय मण्डूकान्। अद्भ्यो-

मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान्। वरुणाय नाक्रान्। २१ सोमाय हंसानालभते। वायवेवलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्। मित्राय मद्‌गून्। वरुणाय चक्रवाकान्। २२ अग्नये कुटरूना लभते। वनस्पतिभ्य उलूकान्। अग्नीषोमाभ्यां चाषान्। अश्विभ्यां मयूरान् मित्रा-वरुणाभ्यां कपोतान्। २३ ॥ इत्यादि।

यजुर्वेद के इस चौबीसवें अध्याय के अन्त तक बहुत से जलचर, स्थलचर, नभश्चर प्राणियों के नाम आए हैं। पता सहित उनके नाम यहाँ लिख देते हैं, विचार कीजिए! जहाँ तक होगा भाषार्थ कर दिया जाता, परन्तु इन वैदिक नामों को भी तो स्मरण रखिये।

देवता के नाम		**प्राणियों के नाम**		**पता**
				(२१)
समुद्र के लिये	...	शिशुभार	=	जलजन्तु जो अपने बच्चों को भी मारकर खा जाए।
पर्जन्य के लिये	...	मण्डूक	=	मेंढ़क, मेढुक
जल के लिये	...	मत्स्य	=	मछली
मित्र के लिये	...	कुलीपय	=	केंकरा
वरुण के लिये	...	नाक्र	=	मगर
सोम के लिए	...	हंस	=	हंस
				(२२)
वायु के लिए	...	वलाका	=	बगुली
इन्द्राग्नि के लिए	...	क्रच	=	सारस
मित्र के लिए	...	मद्‌गु	=	शुतुरमुर्ग
वरुण के लिए	...	चक्रवाक	=	चकवा, चकई
अग्नि के लिए	...	कुटरु	=	मुर्ग (२३)
वनस्पति के लिए	...	उलूक	=	उल्लू
अग्नीषोम के लिए	...	चाष	=	नीलकण्ठ
अश्वी के लिए	...	मयूर	=	मोर
मित्रा वरुण के लिए	...	कपोत	=	कबूतर
सोम के लिए	...	लव	=	बटेर (२४)
त्वष्टा के लिए	...	कौलीक	=	कौलीक नाम का पक्षी

देवता के नाम		प्राणियों के नाम		पता
देवपत्नी के लिए	...	गौषादी	=	गौवों पर बैठने वाले पक्षी
देवजामि के लिए	...	कुलीक	=	
अग्नि के लिए	...	पारुष्ण	=	
दिन के लिए	...	पारावत	=	पौंडकी, कबूतर (२५)
रात्रि के लिए	...	सीचापू	=	
अहोरात्रसन्धि के लिए	...	जतु	=	
मास के लिए	...	दात्यौ	=	काले कौआ
संवत्सर के लिए	...	सुपर्ण	=	सुन्दर पाँख वाला पक्षी
भूमि के लिए	...	आखु	=	चूहा (२६)
अन्तरिक्ष के लिए	...	पाङ्क	=	जो पंक्ति बाँधकर चले
द्युलोक के लिए	...	कश	=	
दिशा के लिए	...	नकुल	=	नेउला
अवान्तर दिशा के लिए	...	बभ्रुक	=	भूरा नेउला
वसु के लिए	...	ऋश्य	=	ऋश्य जाति का हरिण (२७)
रुद्र के लिए	...	रुरु	=	मृगविशेष
आदित्य के लिए	...	न्यङ्कु	=	मृगविशेष
विस्वेदेव के लिए	...	पृषत	=	मृगविशेष
साध्य के लिए	...	कुलुङ्ग	=	मृगविशेष
ईशान के लिए	...	परश्वान्	=	मृगविशेष (२८)
मित्र के लिए	...	गौर	=	मृग
वरुण के लिए	...	महिष	=	भैंस
वृहस्पति के लिए	...	गवय	=	नीलगाय
त्वष्टा के लिए	...	उष्ट्र	=	ऊँट
प्रजापति के लिए	...	पुरुषारथी	=	(२९)
वाग् के लिए	...	प्लुषि	=	मच्छर
चक्षु के लिए	...	मशक	=	मच्छर
श्रोत्र के लिए	...	भृङ्ग	=	भौंरा

अब आगे केवल पशु-पक्षियों के नाम लिख देता हूँ।

गौमृग=
मेष=मेढ़ा
मर्कट=वानर
रोहिदृषि=लालमृग
वर्त्तिका=वत्तक
नीलङ्गो=
मयु=किन्नर
उल=छोटा कीड़ा
हालक्ष्ण=सिंहविशेष
वृषदंश=विलार
कंक=उजजीचील्ह
बक=वगुला
धुक्ष=कौआ
कलविङ्क=चिपैरा
लोहिताहि=लालसाँप
पुष्करसादी=तालाब में रहने वाला
वाहस=अजगर
दार्विद=काठ फोड़ने वाला पक्षी
अजल=
पैङ्गराज=
प्लव=
कूर्म=कछुआ
पुरुष=
मृग=
गोधा=
कालका=
दार्वाघाट=कठकोखा
कृकवाकु=मुर्गा
मकर=मगर

कुलुङ्ग=पक्षी
अज=बकरा
शक=
क्रोष्टा=सियार
पिद्व=मृग
कक्कट=
सागर=पपीहा
सृजयः=
शपाण्डक=
शारी=सुग्गी
श्वावित् =सेही
शार्दूल=केशरी सिंह
वृक=भेड़िया
पृदाकू= साँप
शुक=सुग्गा
अति=
कश्यक=कछुवा
कुण्डूणाची=
गोलत्तिका=
वर्षाभू= मेडुकी
कश=
मान्थल =
अजगर=
शश=खरहा
वृणीवान्=
वार्ध्रीनस=कण्ठ में थन वाला बकरा
सृमर=नीलगांय

शल्पक=सोही। साही	कृपि=
एणी=हरिण	पिक=कोकिल
मूषिक=चुहा	खड्ग=गैंड़ा
लोपाश=	श्वा=कुत्ता
ऋक्ष=रीच्छ	गर्दभ=गधा
जतू=	तरक्षु=व्याघ्र
सुषिलीक=	शूकर= सूअर
जहका=	सिंह=सिंह
अन्यवाप=कोकिल	कृकलास=गिरगट
उद्र=जलचर गिंगचा।	पिप्पका =

इस २४ वें अध्याय में नाना प्रकार के पशु-पक्षियों के नाम कहे गये हैं। इन सबका यज्ञ में प्रयोजन होता है।

षट् शतानि नियुज्यन्ते पशूनां मध्यमेऽहनि अश्वमेधस्य यज्ञस्य नवभिश्चाधिकानिच।

प्रतिदिन तीन सवन=प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन और तृतीय सवन होते हैं। इनमें से जब माध्यन्दिन होने लगता है तब ६०० और ९ प्रकार के पशुओं की प्रदर्शनी होती है। ग्राम-ग्राम नगर-नगर से यज्ञदर्शनार्थ लोग आते हैं। उनके मनोविनोदार्थ और इन पशुओं, पक्षियों तथा ओषधि आदि के स्वभाव-गुण आदि से सब कोई परिचित होवें और इनको यथायोग्य काम में लावें या त्यागें। इस कारण यज्ञ में सब प्रकार के पदार्थ एक स्थान में एकत्रित किए जाते हैं। जो लोग आजकल कलकत्ता, बम्बई, प्रयाग, लाहौर आदि बड़े-बड़े शहरों की प्रदर्शनी देखा करते हैं। वे समझ सकते हैं कि किसी एक स्थान में इतने पदार्थ सरकार की ओर से किस प्रकार इकट्ठे किये जाते है। क्यों इसमें इतने व्यय किए जाते हैं। प्राचीनकाल में भी प्रकृति विमोहित ऋषिगण भी सम्राट द्वारा ऐसी-ऐसी प्रदर्शनी लोकोपकार के लिए करवाया करते थे। आप देखिये उस समय के ऋषिगण कितने उद्योगी और प्रकृति के प्रेमी थे। उन पशुओं में २६० के करीब जंगली पशु होते थे। इनको कैसे जीवित रखें, इसके लिए मनुधर्म सूत्र में उपाय दिया हुआ है।

नाड़ीषु प्लुषिमसकान्। करण्डेषु सर्पान्। पञ्चरेषु मृगव्याघ्र

सिंहान्। कुम्भेषु मकरमत्स्य मण्डूकान्। जालेषु पक्षिणः। करासु हस्तिनः नौषु चौदकानि यथार्थमितरानिति।

नाड़ी=एक प्रकार से तृणों से बनी हुई पेटी उनमें भर कर प्लुषि=छोटी-छोटी चींटी से लेकर मशकपर्यन्त प्राणी रखे जाएँ। करण्ड=एक प्रकार की साँपों के रखने के लिए पेटी। इन करण्डों में साँप रखें। पिंजरे में मृग, व्याघ्र, सिंह आदि॥ घटों में मकर, मछली और मण्डूक=मेंढ़क आदि। जलों में पक्षीगण। कराओं में हाथी। नौकाओं पर जलचर जन्तु। अर्थात् जिस तरह से जिसकी सुविधा हो उस-उस उपाय से उन-उन जन्तुओं को यज्ञप्रदर्शनी में अवश्य रखें।

जिज्ञासुओ! विचारो वेद भगवान् और ऋषिगण क्या मदोन्मत्त थे, जो इस माया में फँसे हुए थे और राम-राम नहीं भजते थे। बात सत्य यह है कि पदार्थज्ञान बिना ईश्वर को कोई पहचान नहीं सकता। मूर्ख अज्ञानी भक्त से ईश्वर डरता रहता है। वह अज्ञानीजन, मिथ्या-मिथ्या कलंक अपने इष्टदेव पर लगाया करता है पुनरपि सुनिये वेद भगवान् क्या बतला रहे हैं।

व्रीहयश्च मे। यवाश्च मे। माषाश्च मे। तिलाश्च मे। मुद्गाश्च मे। खल्वाश्च मे। प्रियङ्गवश्च मे। अणवश्च मे। श्यामाकाश्च मे। नीवाराश्च मे। गोधूमाश्च मे। मसूराश्च मे। यज्ञेन कल्पन्ताम्। —यजुर्वेद १८। १२

व्रीहि=धान। यव=जौ। माष=उर्द। मुद्ग=मूंग। खल्व=चने। प्रियङ्गु=कौनी। अणु=चीन। श्यामाक=कोदो। शामा। नीवार=जंगली धान।

यहाँ सब प्रकार के खाद्य अन्नों के नाम हैं। प्रार्थना की जाती है कि यज्ञ के द्वारा हे परमात्मन्! ये सब पदार्थ मुझे दो। ईश्वर केवल प्रार्थना से नहीं देते किन्तु उन्होंने मनुष्य जाति को इस कार्य के लिए बुद्धि दी है। आजकल कृषि विद्या की भी दिन-दिन उन्नति हो रही है। अनेक नहरें खोदी गई हैं। तिरहुत के पूसा ग्राम में तथा पंजाब के लायल पुर नगर में तथा अन्यान्य स्थान में कृषि विद्या सिखाने को सरकार ने पाठशालाएँ स्थापित की हैं। पुनः—

अश्मा च मे। मृतिका च मे। गिरयश्च मे। पर्वताश्च मे। सिकताश्च मे। वनस्पतश्च मे। हिरण्यञ्च मे। अयश्च मे।

श्यामाश्च मे। लोहञ्च मे। सीसञ्च मे। त्रपुच मे। यज्ञेन-कल्पन्ताम्॥ —यजुर्वेद। १८। १३

अश्मा=पाथर। मृत्तिका=अच्छी मिट्टी। गिरि=छोटे-छोटे पर्वत। पर्वत= बड़े-बड़े हिमालय पहाड़। सिकता=बालू, रेती। वनस्पति= फूल बिना फल देने वाले वृक्ष जैसे—कटहल, गूलर वगैरह। हिरण्य=सोना वा चाँदी। अयस्=लोह। श्याम=ताम्र, लोहे, कांसा। लोह=काला लोह। सीस=सीसा। त्रपु=रांगा।

इस अठारहवें अध्याय को पढ़िए-देखिए। कितने पदार्थों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना है, परन्तु ईश्वर मेरा पुत्र होवे। मैं उनके साथ क्रीड़ा करूँ, मैं इसका मानवरूप देखाना चाहता हूँ। मुझे कब मुक्ति मिलेगी। मैं केवल भक्ति चाहता हूँ और कुछ नहीं इत्यादि ऐसी-ऐसी प्रार्थना वेदों में कहीं भी नहीं है। अब आगे मन्त्र न देकर सिर्फ अनुवाद लिखे देता हूँ। इन पर विचारिये और इनके तत्वावधान के लिए सिकन्दरिया के लिए राजा टालेमी[१] जैसे अजायब खाना स्थापित कीजिए।

यजुर्वेद १७। २ में निम्नलिखित संख्याओं के नाम आते हैं और प्रार्थना है कि इतनी ईंटो का कुण्ड बनाने की शक्ति दो।

एक = १
दश = १०
शत = १००
सहस्र = १०००
अयुत = १००००
नियुत = १०००००
प्रयुत = १००००००
अर्बुद = १०००००००

नोट—१—सिकन्दर आज़म का यह एक सेनापति था। बल्कि इसको सिकन्दर का भाई समझना चाहिये, क्योंकि सिकन्दर के पिता फ़िलिप की दासी "आरसिनो" से इसकी उत्पत्ति हुई है। सिकन्दर के वावीलन नगर में मृत्यु के पश्चात् मिस्र देश में टालेमी ने अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया, यह योग्य विद्वान् था। विद्या प्रचारार्थ इसने सिकन्दरिया नगर में एक विशाल अजायब घर बनवाया।

न्यर्वुद = १००००००००

समुद्र = १०००००००००

मध्य = १००००००००००

अन्त = १०००००००००००

पराध = १००००००००००००

गणित के लिए संख्याओं की आवश्यकता होती है। पुनः गणित की ओर प्रवृत्ति के लिए दो प्रकार से संख्याएँ कहते हैं। १। ३। ५। ७। ९। ११। १३। १५। १७। १९। २१। २३। २५। २७। २९। ३१। ३३। यजुर्वेद १८। २४। दूसरा—४। ८। १२। १६। २०। २४। २८। ३२। ३६। ४०। ४४। ४८। यजुर्वेद १८। २५।

प्रधानतया यजुर्वेद यज्ञों का निरूपण करता है। यज्ञ शब्द के मुख्य तीन अर्थ है—''यज्ञदेवपूजासंगतिकरणदानेषु'' १. देवपूजा, २. संगतिकरण और ३. दान। पदार्थों को यथायोग्य मिलाने का नाम संगतिकरण है। इस हेतु ऋषिगण जहाँ तक जिस-जिस वस्तु को जानते थे इन सब पदार्थों का यज्ञ में संगति अर्थात् संगम=एकत्र किया करते थे, अतएव उस समय तक जितने पदार्थ विदित थे प्रायः उन सबका प्रयोग किसी न किसी रूप से यज्ञस्थल में किया करते थे। खेती की सामग्री हल, बैल, कूप, बीज, खनिज, हल का चलाना, बोना, काटना, सींचना आदि। खाने में जो भात, दाल, रोटी, धान, करम्भ-सक्तु, परीवाप, दूध, दही, आमिक्षा, मधु, जल, आसन, पीढ़ी आदि। यज्ञ के स्रुक, चमस, व्यायव्य, द्रोणकलश, ग्रावा, अधिषवण, पूतभृत, आधवनीय वेदी, कुश इत्यादि और मनुष्यों के जितने भेद हो सकते हैं ये सब यहाँ इकट्ठे किये जाते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, तस्कर,वीरहा, क्लीव, अयोगू, पुंश्चलू, मागध इत्यादि दो सौ से अधिक नाम ३० वें अध्याय में आए हैं। मैं कहाँ तक गिनाऊँ। एक कोश ही बन जाएगा। स्वयं यजुर्वेद और उसका ब्राह्मण शतपथ पढ़कर देखिए। यज्ञ में कितने पदार्थ आयोजित होते थे।

यजुर्वेद में दर्शपौर्णमासेष्टि, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणि, अश्वमेघ और सर्वमेघ आदि यज्ञों का वर्णन आया है, परन्तु किसी में भी ईश्वर प्रयोग नहीं पाया जाता। ईश्वरीय पदार्थों का ही बहुत प्रयोग देखते हैं। इससे विशदतया परमात्मा अपनी विभूति जताने के लिए ही

प्रेरणा करते हैं, यह सूचना होती है। एवमस्तु। इसी प्रकार सम्पूर्ण ऋग्वेद अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत्, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, नदी, पर्वत, समुद्र, वर्षा, मेंढ़क, कपिञ्जल, पृथिवी, मनुष्य, वाण आदियों की ही स्तुति से भरा हुआ है। सामवेद इनको ही विशेष रूप से गाते हैं।

वेदों से लेकर तुलसीदास जी की भाषा रामायण तक, ऋग्वेद के आद्य ऋषि मधुच्छन्दा से ऋषिदयानन्द तक, प्रथम कवि वाल्मीकि से बिहारी तक, कथा लेखक व्यास से सोमदेव भट्ट तक, इतिहासान्वेषी ग्रीस देश के हिरेडोटस से वंगवासी रमेशचन्द्र तक एवं सम्प्रदाय प्रवर्तक इरानी ज़रदुस्त, यहूदीमूसा, कपिल ग्राम निवासी बुद्धदेव, जेरुजेलम प्रदेश विभूषक, ईसामसीह, अरबदेशालंकार मुहम्मद तथा भारतभूषण शंकराचार्य, रामानुज, वल्लभ माध्व, विष्णु कबीरदास, नानक साहिब, गुरुगोविन्द, दादूराम, नारायण, राजाराममोहनराय, केशवसेन और नूतन-नूतन विद्याओं के सृष्टिकर्त्ता षट्शास्त्र रचयिता कपिल, पतञ्जलि, गौतम, कणाद, व्यास, जैमिनी तथा विदेशी एथेन्स नगर शिरोमणि साक्रेटीज, प्लेटो, अरिष्टोटल, विलायती, गलेलियो, सरआइज़ेकन्यूटन कहाँ तक मैं नाम गिनाऊँ सृष्टि की आदि से अभी तक जितने आचार्य वा ग्रन्थ लेखक हुए हैं। ऐ जिज्ञासु पुरुषो! वे किन बातों का वर्णन कर गये हैं और कर रहे हैं। कदाचित् आप समझते होंगे कि वे किन्हीं महा-महा अति अद्भुत बातें कह गये हैं जो हम लोगों की समझ में न आवेंगी। वे कोई महान् देव थे वा आश्चर्य सिद्ध सिद्धेश्वर योगी थे, जो आँखों से प्रत्यक्ष करके सब बातें कह गए। हम लोगों में इतनी बुद्धि नहीं कि उनके जानने में समर्थ हों। प्यारे विद्याभिलाषियो! सुनो वे प्राचीन किन्हीं महा-महा अद्भुत् बातों को न लिख गये और न नवीन किन्हीं अज्ञेय बातों को लिख रहे हैं। हे शुद्ध हृदय ग्रामीणजनो! जिन पदार्थों को आप अपने चारों तरफ प्रतिदिन देखते हैं, उन्हीं का वर्णन यथामति सब कर गये हैं और अब तक कर रहे हैं। आप चारों ओर किन वस्तुओं को देखते हैं, कहिए तो क्या आप रात्रि में जब ऊपर शिर करते हैं तो अनन्त असंख्य आकाश में लटके से हुए नक्षत्र समूहों को नहीं देखते? जब उससे नीचे आते हैं तब क्या वर्षा ऋतु के मेघ की घटाएँ, बिजली, घोरगर्जन और वृष्टि आपको चकित, विस्मित, भीत, आनन्दित नहीं कर देती। कभी मन्द सुगन्ध, शीतल,

कभी तीव्र, दुर्गन्ध, उष्ण और आँधी तूफान, बवण्डर लिए हुए वायु कैसे झोकों से चलती है। पृथिवी पर अग्नि, जल, पशु, पक्षी, तृण, गुल्म, वीरुध, लता, धान्य, औषध, फल मूल कन्द, स्थलचर, जलचर, नभश्चर कीट-पतंग, कीड़े-मकोड़े इत्यादि सहस्त्रों पदार्थ देखते हैं। जिस ओर आप आँख उठावें उसी ओर ईश्वर की विभूतियाँ दीख पड़ती हैं। इन्हीं का वर्णन सर्वत्र है। ऋग्वेद सबसे पहले अग्नि की ही स्तुति करता है। सामवेद प्रथम मन्त्र में अग्नि नाम से ही ब्रह्म का गान करता है। यजुर्वेद आदि कण्डिका में श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्ति के और पशुओं की रक्षा के लिए प्रार्थना करता है। अथर्ववेद त्रिसप्त अर्थात् उत्तम, मध्यम और अधम भेद से इक्कीस प्रकार के जो दो आँखें, दो कान, दो नासिकाएँ, एक मुख हैं। उनका ही वर्णन से आरम्भ होता है।

ब्राह्मण ग्रन्थ—वेदों के पश्चात् ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य, गोपथ, कृष्ण यजुर्वेद, तैत्तिरीय, कौषीतकि आदि शतशः जो ब्राह्मण नाम से ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। और आपस्तम्ब, आश्वलायन, कात्यायन, बौद्धायन सत्याषाढ़ीय वैखानस आदि श्रौत वा गृह्यसूत्र हैं। वे सब ही कर्मकाण्ड का ही वर्णन करते हैं। कदाचित् कर्मकांड शब्द सुनकर आपके मन में अलौकिक भाव की उत्पत्ति हुई हो। नहीं। उनमें भी किसी अलौकिक बात का वर्णन नहीं। आप भी कर्म करते हैं। स्नान, संध्या, पूजापाठ, होम, बलि, तर्पण आप प्रतिदिन अब भी करते हैं। उस सबका ही ढंग-रंग से उन ग्रन्थों में वर्णन है। दशेष्टि, पूर्णमेष्टि, राजसूय, सर्वमेध, अग्निष्टोम, ज्योतिष्टोम, गवामयन, आदित्यानामयन, अंगिरसानामयन, इत्यादि-इत्यादि विविध यज्ञों का निरूपण उन ग्रन्थों में है। वैदिक यज्ञों का यदि आप अध्ययन करें तो आश्चर्यान्वित हो जाएँगे। वह लीला देखते-देखते उकस जाएँगे। ब्राह्मण विहित याज्ञिक समय के पश्चात् उपनिषद् और आरण्यक का समय आता है। उपनिषद अध्यात्म और वेदान्त शास्त्र कहलाता है, परन्तु इनमें है क्या ? सज्जनों ! नयन, कर्ण, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, मन, चित्त, आत्मा इनको ही तो विविध अंगों से ऋषिगण निरूपण करते हैं। परमात्मा से इस जगत् का क्या सम्बन्ध है और वह कैसा है। उस ब्रह्म की प्राप्ति कैसे हो सकती है। यह विषय भी बहुधा वर्णित हुए हैं। आरण्यक ग्रन्थ वह कहलाता है जिसको प्राचीन ऋषि मुनि अरण्य=वन में जाकर पढ़ते-पढ़ाते और

विचारते थे। जैसे बृहदारण्यकोपनिषद्। यहाँ आरण्यक और उपनिषद् दोनों शब्द आये हैं। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और वृहदारण्यकोपनिषद् ये दश उपनिषदें परम प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त कौषीतकी, श्वेताश्वर और मैत्रेयी आदि भी उपनिषदें उपयोगी हैं। ऐतरेयारण्यक, तैत्तिरीयारण्यक आदि आरण्यक ग्रन्थ हैं, इनमें भी प्रधानतया अध्यात्म वस्तु का ही वर्णन आया है।

❑❑

षट्शास्त्रजिज्ञासाऽध्याय ४

वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त ये षट्शास्त्र वा षट्दर्शन कहाते हैं। इनके रचयिता क्रमशः कणाद, गौतम, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनि और वादरायण व्यास हैं। वैशेषिक शास्त्र का सहायक न्याय और सांख्य का सहायक योगशास्त्र है। इस प्रकार चार ही शास्त्र कहे जा सकते हैं। विषयों के भेद से ये तीन में विभक्त हो सकते हैं— प्रकृति कारणवाद, परमाणु कारणवाद और ब्रह्म कारणवाद। इसमें वैशेषिक एवं सांख्यशास्त्र स्वतन्त्र और मीमांसा एवं वेदान्त परतन्त्र हैं। कपिल और कणाद को नूतन विद्यास्थापक कहते हैं। जैमिनि और व्यास ये दोनों किसी नूतन विद्या के आविष्कार कर्त्ता नहीं किन्तु ब्राह्मणों और उपनिषदों के प्रतिपादित अर्थों को निज-निज युक्तिरूप फूलों से भूषित करने वाले हैं। ये छह शास्त्र जिन-जिन रूपों से प्रकट हुए थे वे उनके रूप अब नहीं है। इनमें सांख्य बहुत प्राचीन है, परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि कपिल प्रणीत ग्रन्थ कोई भी अब उपलब्ध नहीं होता। उनका सिद्धान्त प्रचलित है इसमें सन्देह नहीं। वैशेषिक और न्याय दोनों आगे चलकर गंगा, यमुना के समान मिल गये और न्याय नाम से प्रसिद्ध हुए। आगे न्याय भी इसका यथार्थ नाम नहीं रहा। इस शास्त्र को तर्क नाम से पुकारने लगे। इसकी अपने ढंग पर बड़ी तरक्की हुई, परन्तु कणाद वा गौतम की पद्धति नहीं रही। वेदान्त का स्वरूप सर्वथा बदल गया। जिस वेदान्त का व्यास प्रचार करते थे वह अब नहीं रहा। यह मायावाद बनकर जगत् के मोह के लिए हो गया। व्यास ने जिस ब्रह्मोपादान कारण की स्थिरता के लिए उतना उद्योग किया था, वह ब्रह्म भी उपादान कारण न रहा। बीच में माया आ गई। अजातवाद की शंखध्वनि हो गई, जो पिता-पुत्र का सम्बन्ध ब्रह्म और जगत् में स्थापित किया गया था स्वप्न हो गया, भ्रम ठहराया गया। न यह सृष्टि कभी बनी और बनेगी फिर पिता-पुत्र का सम्बन्ध ही क्या? जब सृष्टि हुई ही नहीं तो सम्बन्ध का अन्वेषण कैसा? इस प्रकार वेदान्त की महती अधोगति हो रही है। मीमांसा की

भी अपने समय में कुछ तरक्की हुई, परन्तु वह बढ़ने न पाई। मीमांसा प्रतिपादित कर्मकाण्डों से जनता घृणा करती ही रह गई, क्योंकि ये कर्म प्रायः हिंसा से रहित नहीं हैं। यज्ञों में पशु हिंसा की इन्होंने रक्षा की। जैमिनि कुमारिलभट्ट और शवर आदि अनुयायी जितने हुए वे इस यज्ञ को सप्रमाण पुष्ट करते गये। शंकराचार्य जैसे विद्वान्गण भी इसी पक्ष में रहे। पर इसके विरुद्ध मोटी-मोटी लाठी लेकर बौद्ध और जैन खड़े थे। पीछे वैष्णव-सम्प्रदाय भी इस प्रसंग में बौद्ध का ही अनुगामी हुआ। यद्यपि शंकराचार्य हिंसा को वैदिकी और कर्त्तव्य कहकर मुँह छिपा लेते थे। तथापि इन्होंने ऐसी युक्ति निकाली जिससे मीमांसा के कर्मकाण्ड का अभ्युदय न होने पाया।

शंकराचार्य ने कहा कि कर्म एक तुच्छ चीज है। अज्ञानियों के लिए उपदिष्ट है। ब्रह्म ज्ञान की ही श्रेष्ठता है। कर्म से कदापि मुक्ति नहीं होगी। कर्म महाबन्धन है। ज्ञान से ही मुक्ति होती है। ब्रह्म और हम जीवों में कोई भेद नहीं। 'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध होने से ही कृतकृत्यता होती है। सामवेदी छान्दोग्योपनिषद में इसके बहुत उदाहरण हैं। तत्वमसि श्वेतकेतो यह नव बार कहा गया। इत्यादि वर्णन ने मनुष्यों के चित्त को आकर्षित कर लिया। इस कारण भी मीमांसा की तरक्की न हुई। इसके सिवाय भक्ति मार्ग का ऐसा प्रवाह बहने लगा कि जिसमें छह शास्त्र डूब गये, मीमांसा को यह कौन पूछता। वेदान्त भी एक कोने में छिप गया। मनुष्य इस भक्ति से भी प्रसन्न न रहे। इस समय सब ही सम्प्रदायें खिचड़ी होकर भयंकर रूप धारण किये हुए हैं। भारतवर्ष में इस समय काल रात्रि का समय है। हाँ, पश्चिम से कुछ प्रकाश आ रहा है। देखें क्या परिवर्तन लाता है। अब मैं यहाँ संक्षेप से षट्दर्शनों का निरूपण करता हूँ।

षट्शास्त्र

वैशेषिक शास्त्र—छह शास्त्रों में वैशेषिक शास्त्र की अधिक प्रतिष्ठा है। आपको आश्चर्य होगा कि यह किस अलौकिक वस्तु को दिखलाता है जिससे इसका इतना गौरव है। यह शास्त्र प्रधानता से पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पाँच भूतों का तथा समय, दिशा, शरीर, इन्द्रिय, मन, जीवात्मा का वर्णन कर रहा है। आप प्रतिदिन इन पृथिवी आदि पाँच महाभूतों को क्या आँखों से नहीं देखते ? क्या

इनसे यथाशक्ति यथा बोध काम नहीं ले रहे हैं? पृथिवी से सहस्त्रों पदार्थ आप उत्पन्न करते हैं। स्वच्छ जल पीते हैं। अग्नि से आप कितने स्वादिष्ट भोजन तैयार करते हैं। मन्द, शीतल, सुगन्ध, वायु को आप बहुत पसन्द करते हैं। आकाश चारों ओर घेरे हुए है। इसके अतिरिक्त आप देखते हैं कि प्रातःकाल कैसा रमणीय होता है। सायंकाल कैसी दैवी घटना दिखला कर परमात्मा की विभूतियों की ओर मनुष्य को ले जाता है। अब दिन नहीं रहा। अन्धकार रात्रि आ गई। पशु-पक्षी चुप साध गये। उलूक और चमगीदड़ दौड़ने लगे। इस प्रकार प्रतिदिन वही दिन-वही रात्रि चक्रवत् घूमते रहते हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशाओं का अन्त आपको नहीं लगता। शरीर में मन कैसा एक अद्भुत वस्तु है। जीवात्मा बिना यह देह किस काम का। अब आप परीक्षा और समीक्षा कर सकते हैं कि जिसकी इतनी महती प्रतिष्ठा है वह भी इन्हीं वस्तुओं के वर्णन में अपना समय बिता रहा है।

वैशेषिक कर्त्ता कणाद कहते हैं कि—

'धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्वज्ञानान्निःश्रेयसम्'। १।४।

छः पदार्थ हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। इनके ही जानने से मनुष्य मुक्तिलाभ करता है।

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालोदिगात्मामन इति द्रव्याणि।

—१।५।

१—द्रव्य के नौ भेद हैं—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन।

रूपरसगंधस्पर्शाः, संख्याः, परिमाणानि, पृथक्त्वं, संयोग-विभागौ, परत्वापरत्वे, बुद्धयः सुखदुःखे, इच्छा द्वेषौ, प्रयत्नाश्च-गुणाः। ७।६।

❑❑❑
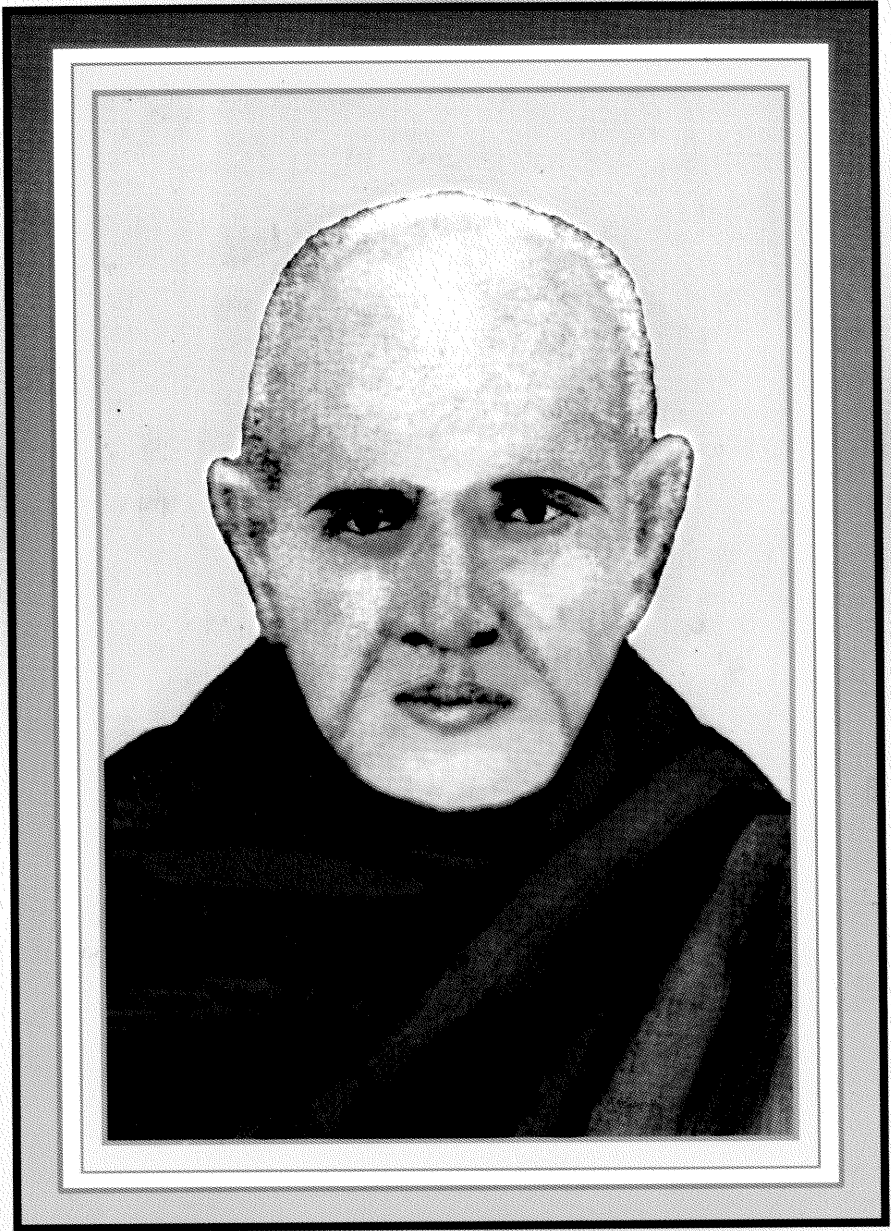
पं० शिव शंकर शर्मा 'काव्यतीर्थ'

आवरण : श्रीमहालक्ष्मी; ०११-६५८४५५११, ९३१३७८४२७२